प्राक्कथन

प्राचीन काल से भारतवर्ष में आयुर्वेद-विषयक विपुल साहित्य की रचना हुई है। उसमें बहुत-सी ग्रन्थराशि अभी तक अप्रकाशित ही है। आयुर्वेद के अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थों का उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पाठशोधन व उत्तम सम्पादन कर प्रकाशित करना हमारा एक आवश्यक व पावन कर्त्तव्य है। इसकी उपेक्षा कर हम ऋषिऋण से मुक्त नहीं हो सकते। इसी भाव को ध्यान में रखते हुए पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार की ओर से प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना चल रही है। इसके पीछे श्रद्धेय स्वामी रामदेवजी महाराज की शुभ भावना व सत्प्रेरणा हमारा मुख्य सम्बल है। इसी से प्रेरित होकर हमने दुर्लभ प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत-ग्रन्थों के प्रकाशन की यह योजना प्रारम्भ की है। इसी के अन्तर्गत- **'भोजनकुतूहलम्'**, **'आयुर्वेद-महोदधिः (सुषेण-निघण्टुः)'** व **'अजीर्णामृतमञ्जरी'**- ये तीन ग्रन्थ सर्वप्रथम प्रकाशित किए जा रहे हैं।

इन ग्रन्थों की मूल हस्तलिखित प्रतियों के अन्वेषण व उनके आधार पर मूलपाठ-शोधन के अध्यवसाय-साध्य कार्य में संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् डॉ० विजयपाल शास्त्री 'प्रचेता' व उनके सहयोगियों का विशेष अवदान रहा है। इसके अभाव में प्रस्तुत प्रकाशन कार्य को अन्तिम रूप देना मेरे लिए बहुत दुष्कर था। अत: उक्त शुभसंकल्प को मूर्त रूप देने में विशेष पुरुषार्थ व सहयोग के लिए श्री प्रचेताजी को भूरिश: धन्यवाद। साथ ही हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध करवाने वाले सभी हस्तलेखागारों के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इस उपक्रम में आगे भी योग व आयुर्वेद के उत्तमोत्तम ग्रन्थों का शुद्ध सम्पादन व सरल अनुवाद के साथ प्रकाशन उत्तरोत्तर होता रहे, ऐसी हमारी कामना है। आशा है श्रद्धेय स्वामीजी महाराज की सत्प्रेरणा, शुभाशीर्वाद तथा भगवत्कृपा से हमारा संकल्प रूप कल्पतरु निरन्तर पुष्पित, फलित होता रहेगा।

श्रावण बदि १३, सं. २०७० वि. **-आचार्य बालकृष्ण**
(४.८.२०१३ ई. रविवार)

भूमिका

आयुर्वेदीय वाङ्मय में 'अजीर्णामृतमञ्जरी' नामक एक लघु किन्तु अति महत्त्वपूर्ण रचना के उद्धरण यत्र-तत्र ग्रन्थों में दिखाई देते हैं। इस विषय में जानकारी करने पर विदित हुआ कि इसके तीन-चार संस्करण प्रकाशित भी हुए हैं। पहला प्रकाशन- **'अजीर्णमञ्जरी'** (पण्डित दत्तराम माथुर कृत भाषाटीका सहित) वि० संवत् १९४२ में मथुरा से प्रकाशित हुआ था। इसमें 'अजीर्णामृतमञ्जरी' नामक प्राचीन रचना से पहले अनेक अजीर्ण-विषयक श्लोक जोड़ दिए हैं। जिससे यह पता नहीं चलता कि पीछे से जोड़ा अंश कौन-सा है तथा मूलभाग कौन-सा। इस संस्करण में कुछ पाठदोष व व्याख्यादोष भी रह गए हैं।

इसके अनन्तर दूसरा संस्करण 'अजीर्णमञ्जरी' (श्रीमत्पण्डितदत्तराम-विरचिता, निर्मला-व्याख्यया संवलिता) चौखम्बा आयुर्विज्ञान ग्रन्थमाला में नवीं संख्या पर प्रकाशित हुआ है। इसमें डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी की हिन्दी-व्याख्या है। यह संस्करण पूर्व-संस्करण के आधार पर ही तैयार किया गया है। इस संस्करण में भी अनेक पाठदोष व व्याख्यादोष विद्यमान हैं। व्याख्याकार ने वास्तविक जानकारी के अभाव में इस प्राचीन रचना को पण्डितदत्तराम-विरचित ही माना है, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि पण्डित दत्तराम माथुर ने प्राचीन रचना में कुछ आरम्भिक श्लोक जोड़कर भाषाटीका के साथ इसका प्रकाशन करवाया था।

'अजीर्णमञ्जरी' का तीसरा संस्करण 'निघण्टुरत्नाकर' के अन्त में मराठी अनुवाद के साथ छपा है। इसमें भी बहुत से पाठदोष हैं व श्लोकों की स्थिति भी अस्त-व्यस्त है। एक अन्य संस्करण तेलगू-भाषानुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है। इसका आधार पण्डित दत्तराम द्वारा सम्पादित व प्रकाशित हिन्दी भाषाटीका वाली अजीर्णमञ्जरी ही है।

इस प्रकार इस रचना के विषय में प्रचलित भ्रान्ति को दूर करने तथा इसका शुद्धतम प्राचीन पाठ व्याख्या सहित प्रकाशित करने हेतु यह प्रयास किया गया है। इसके अन्तर्गत भारत व नेपाल के हस्तलेखागारों से 'अजीर्णामृतमञ्जरी' की २५ हस्तलिखित प्रतियां एकत्र की गईं। उनमें अहमदाबाद से प्राप्त एक प्रतिलिपि तो ३५० वर्ष पुरानी है। सभी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का अवधानपूर्वक अवलोकन कर पाठालोचनपूर्वक यह संस्करण तैयार किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए इसमें संस्कृत-व्याख्या व हिन्दी-व्याख्या भी दी गई है। पाठशोधन व सम्पादन हेतु प्रयुक्त प्रतिलिपियों का विवरण परिशिष्ट-४ में दिया गया है।

रचयिता-

'अजीर्णामृतमञ्जरी' की हस्तलिखित प्रतियों में कहीं रचयिता का नाम 'काशिनाथ' मिलता है तथा कहीं 'काशिराज'। इनमें पहला नाम ही उचित है। लिपिकरों के अनवधान से 'काशिनाथ' का 'काशिराज' हो गया है, जो ग्राह्य नहीं है। हस्तलिखित प्रतियों में जो कहीं-कहीं 'काशिराज' नाम लिखा है, उसे देख कर बहुत से लेखक इसे 'काशिराज धन्वन्तरि' कृत मानते हैं, परन्तु यह धारणा काल्पनिक व इतिहासविरुद्ध होने से ग्राह्य नहीं है[१]।

आयुर्वेद के इतिहास में 'अजीर्णामृतमञ्जरी' को चौदहवीं ई. शताब्दी के विद्वान् श्रीकाशिनाथ की रचना माना जाता है। रचयिता के विषय में अधिक जानकारी के लिए गवेषणा अपेक्षित है। प्रस्तुत रचना का प्राचीनतम हस्तलेख वि. संवत् १७२० का उपलब्ध हुआ है। इसमें कुल ५२ पद्य हैं,

---

१. अजीर्णामृतमञ्जरी की अज्ञातकर्तृक संस्कृत टीका में उक्त काल्पनिक मान्यता के अनुसार इस रचना का रचयिता धन्वन्तरि को मानते हुए लिखा है-

सकलभुवनोपकाराय भूतलमवतीर्णो धन्वन्तरिर्देवः पुनरप्यायुर्वेदं बहुधोपदिश्य समस्तरोगहेतुभूतस्य अजीर्णस्यानुपपत्तये तत्तद्द्रव्योद्भवाजीर्णनाशनं द्रव्यमुपदिशन्निमामजीर्णामृतमञ्जरीं चिकीर्षुर्विघ्नविनाशाय स्वेष्ट-देवतानतिरूपं मङ्गलं चकार।

जो विविध गेय छन्दों में सुललित रूप में रचे गए हैं। अन्य प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में भी श्लोक संख्या यही है। अर्वाचीन हस्तलिखित प्रतियों के प्रारम्भ में अन्य ग्रन्थों के कुछ पद्य जोड़ देने से श्लोक-संख्या अधिक हो गई है। परन्तु हमने प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर ५२ श्लोकों को ही मूल रचना के रूप में स्वीकार किया है।

रचना का नाम-

अब तक छपे चारों संस्करणों में इस रचना का नाम 'अजीर्णमञ्जरी' दिया है। हस्तलिखितग्रन्थ-सूचीपत्रों में इसका नाम- **अजीर्णमञ्जरी**, **अमृतमञ्जरी** व **अजीर्णामृतमञ्जरी**- इन तीन रूपों में मिलता है। इन तीनों नामों में से हमने 'अजीर्णामृतमञ्जरी' नाम ही लिया है, क्योंकि इससे पुस्तक का प्रतिपाद्य-विषय विशेष रूप से स्पष्ट होता है। अत: ग्रन्थकार के अभिप्राय के अनुसार इस रचना का नाम 'अजीर्णामृतमञ्जरी' ही उपयुक्त है। प्रस्तुत रचना के निम्न श्लोक से भी यही सूचित होता है-

तत्तन्महाजीर्णविषापनेत्री
जीयाच्चिरायामृतमञ्जरीयम्।
सत्षट्पदानन्दमयीमसन्तो
घुणा इवैनामवधीरयन्तु।। (अ.मं.-५१)

अर्थात् विविध प्रकार के अजीर्णविष के निवारण का उपाय बताने वाली यह **'अजीर्णामृतमञ्जरी'** रचना है। रचयिता ने इसी के साथ अपने नाम की सूचना भी इस प्रकार दी है-

पद्यैर्मुनीनामनवद्यपद्या
श्रीकाशिनाथेन शिशो: सुखाय।
स्फुटीकृताजीर्णविषापहन्त्री
जीयाच्चिरायामृतमञ्जरीयम्।। (अ.मं.-५२)

अर्थात् प्राचीन मुनियों के पद्यों के आधार पर श्रीकाशिनाथ ने शिशुजनों के हितार्थ यह 'अजीर्णामृतमञ्जरी' बनाई है।

संस्कृत व्याख्या-

प्रस्तुत ग्रन्थ से अधिकाधिक पाठक लाभान्वित हो सकें, एतदर्थ हमने इसका सरल हिन्दी-भाषान्तर प्रस्तुत किया है। साथ ही संस्कृत के विद्वानों के लिए संस्कृत-व्याख्या भी प्रकाशित की है। अजीर्णामृतमञ्जरी की यह संस्कृत-व्याख्या लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात) से प्राप्त हस्तलेख संख्या-५०१७ पर आधारित है। इस टीका में रचयिता के नाम का उल्लेख नहीं है। अत: इसे यहाँ 'अज्ञातकर्तृका संस्कृत-टीका' के रूप में प्रस्तुत किया है। टीकाकार को मूल पुस्तिका का जो हस्तलेख उपलब्ध हुआ था, वह कुछ स्थलों पर गम्भीर पाठदोषों से युक्त था। अत: उसके आधार पर की गई व्याख्या अनेक स्थलों पर ग्राह्य नहीं हो पाई। इसलिए प्रस्तुत संस्करण में प्रकाशित शोधित मूलपाठ के अनुसार संस्कृत-व्याख्या में परिष्कार किंवा प्रतिसंस्कार किया गया है। इस प्रकार यह व्याख्या परिशोधित पाठ के अनुरूप परिणत होने से संस्कृतज्ञ पाठकों के लिए विशेष रूप से उपादेय सिद्ध होगी।

प्रतिपाद्य विषय- अजीर्ण-निवारण-

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है तथा पूर्व श्लोकों में भी कहा गया है कि- विविध प्रकार के अजीर्णरूप विष के निवारण का विवेचन करने वाली यह 'अजीर्णामृतमञ्जरी' नामक रचना है। इससे सूचित होता है कि इसका प्रतिपाद्य विषय 'अजीर्ण-निवारण' है।

अजीर्ण को सब रोगों का मूल माना जाता है। अजीर्ण की स्थिति में भोजन करने से नाना मल व दोष कुपित होकर विविध रोगों को पैदा कर देते हैं। इसी भाव को प्रकट करने वाला यह वाक्य प्रसिद्ध है- **'अजीर्णे भोजनं विषम्'** अर्थात् अजीर्ण में भोजन करना विषतुल्य होता है। अत एव

अजीर्ण को रोगों का मूल कहा गया है। संस्कृत में रोग का पर्यायवाची शब्द **'आमय'** है, इसीलिए निरोग व्यक्ति को **'निरामय'** कहते हैं तथा प्रार्थना की जाती है कि- **'सर्वे सन्तु निरामयाः'**। आमय शब्द का भाव है- जो आम अर्थात् अजीर्ण से पैदा होता है। इससे स्पष्ट है कि सभी रोगों का मूल 'आम' अर्थात् अपक्व आहार रस है, जो जीर्ण नहीं होता है। इसीलिए आयुर्वेद में कहा है कि- **'जीर्णे हितं मितं चाद्यात्'** अर्थात् पूर्वभोजन के जीर्ण होने पर ही हितकर व मित भोजन करना चाहिए। यह स्वास्थ्य का मूल मन्त्र है।

इसे एक कहानी द्वारा समझाया गया है- एक राजा के राज्य में आयुर्वेद के एक महान् विद्वान् थे। उन्होंने एक लाख श्लोकों की संहिता बनाई। उनकी प्रसिद्धि राजा तक पहुंची तो राजा ने उन्हें ससम्मान बुलवाया और कहा, भगवन्! राजकार्य में व्यस्त होने से मैं आपकी विशाल आयुर्वेद-संहिता का श्रवण नहीं कर सकता। कृपया मुझे लाख श्लोकों का सार एक वाक्य में ही बतला दीजिए। इस पर आचार्य ने कहा, राजन्! यदि लाख श्लोकों का सार एक ही वाक्य में सुनना चाहते हैं, तो वह इस प्रकार है-

'जीर्णे भोजनमात्रेयः, लंघनं परमौषधम्'।

अर्थात् पूर्वभोजन के जीर्ण होने पर ही भोजन करना चाहिए। यह लाख की एक बात है। यदि कभी प्रमाद से अजीर्ण हो जाए तो लंघन (उपवास) उसकी परम औषधि है। इस प्रसंग से आयुर्वेद के अनुसार जीर्णभोजिता व लंघन का सर्वातिशायी महत्त्व व्यंजित होता है।

ऐसा ही उपदेश-वचन भगवान् बुद्ध का भी है। एक बार बुद्ध उपदेश दे रहे थे। श्रोताओं में राजा प्रसेनजित् भी बैठे थे। उपदेश सुनते-सुनते वे ऊंघने लगे। बुद्ध ने पूछा राजन्! कैसे आपको आलस्य ने घेर लिया है? राजा ने कहा भगवन्! आज भोजन बड़ा स्वादिष्ठ था, कुछ अधिक मात्रा में खाया गया। उसी के कारण शरीर में भारीपन व आलस्य छा गया है। तब भगवान् बुद्ध ने राजा को उद्देश्य करके एक गाथा का उच्चारण किया-

हिताहारा मिताहारा अल्पाहाराश्च ये जनाः।
न तान् वैद्याश्चिकित्सन्ति आत्मनस्ते चिकित्सकाः।।

अर्थात् जो व्यक्ति हिताहारी (हितकर आहार करने वाले), मिताहारी (परिमित, नपा तुला, न अधिक न कम आहार करने वाले) तथा कभी-कभी अल्पाहारी (कम भोजन या उपवास करने वाले) होते हैं, उनकी चिकित्सा वैद्य लोग नहीं करते, प्रत्युत वे अपने चिकित्सक स्वयं होते हैं। भाव यह है कि जैसे ही कभी प्रमादवश थोड़ा अजीर्ण हुआ, तो लंघन करके वे तुरन्त दोष को दूर कर देते हैं। इस प्रकार वे अपनी चिकित्सा स्वयं ही कर लेते हैं तथा जीवन में कभी रोगों से पीड़ित नहीं होते हैं।

भगवान् बुद्ध के मुख से निकली उक्त गाथा राजा प्रसेनजित् को बहुत पसन्द आई। राजा ने उसी दिन से अपनी भोजनशाला में एक माणवक को नियुक्त कर दिया। वह राजा के भोजनकाल में निरन्तर इस गाथा का पाठ करता रहता। इससे राजा को मिताहार व अल्पाहार की स्मृति बनी रहती थी तथा वह जागरूकतापूर्वक अतिभोजन के दोषों से बचा रहता था।

उक्त गाथा में मिताहार के पश्चात् अल्पाहार का निर्देश इसलिए किया है कि यदि कभी-कभी अल्पाहार या उपवास करें तो हमारी जठराग्नि सञ्चित दोषों को नष्ट कर देगी व रोगी होने की स्थिति ही नहीं आएगी। क्योंकि आयुर्वेद का सिद्धान्त है-

आहारमग्निः पचति दोषानाहारवर्जितः।
धातून् क्षीणेषु दोषेषु जीवितं धातुसंक्षये।। (अ.हृ.चि.-१०.९१)

अर्थात् जठराग्नि आहार को पचाती है, यदि उसे आहार नहीं मिले तो बढ़े हुए दोषों को पचाती है, नष्ट करती है। दोषों के क्षीण होने पर भी उपवास किया जाएगा तो जठराग्नि रस-रक्त आदि धातुओं को जलाने लगती है व शरीर कृश होने लगता है तथा अन्त में जीवन को नष्ट कर देती है। अत: उतना उपवास या अल्पाहार करना चाहिए जिससे दोष तो नष्ट हो जाएं, परन्तु शरीर की क्षीणता का अवसर न आए।

इस रहस्य को आयुर्वेद-मनीषियों ने भारत के जनमानस में बहुत अधिक गहनता से प्रचारित कर दिया था, अत: यहां समय-समय पर लंघन या उपवास को धार्मिक कृत्य के रूप में श्रद्धा से अपनाया जाता है। धर्मशास्त्रों में अमावस्या व पूर्णिमा के दिन गृहस्थ (पति-पत्नी) के लिए उपवास का विधान किया गया है। यदि इन दिनों में पूर्ण उपवास न कर सकें तो एक समय (सायंकाल) के भोजन का त्याग अवश्य करें, ऐसा उल्लेख है[१]। यह आरोग्य के लिए बहुत ही उत्तम परम्परा है।

ऋतुसन्धि में चैत्र व शारदीय नवरात्रों के समय उपवास के साथ धार्मिक अनुष्ठान की परम्परा आरोग्य के लिए अतीव लाभकारी होती है, क्योंकि उन ऋतुओं में संचित दोष फलाहार व उपवास से नष्ट हो जाते हैं तथा व्यक्ति वर्ष भर निरोग रहता है।

उक्त ऋतुसन्धियों में कफ-पित्त आदि दोषों का उभार विशेष रूप से होता है, अत: उस समय अल्पभोजन व लंघन अति हितकर माना गया है। शारदीय ऋतुसन्धि के बारे में कहा गया है-

कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावग्रायणस्य च।
यमदंष्ट्रा समाख्याता स्वल्पभुक्तो हि जीवति।। (शार्ङ्ग.सं.-१.२.२९)

अर्थात् कार्तिक के अन्तिम आठ दिन व मार्गशीर्ष (अगहन) के आदिम आठ दिन साक्षात् यमदंष्ट्रा (यमराज की दाढ़) के रूप में होते हैं। इस समयावधि में थोड़ा खाने वाला या उपवास करने वाला ही रोगों व यमराज की पकड़ से बच पाता है।

---

१. **'पर्वसु चोभयोरुपवास:'**- पक्षसन्धि: पर्व। इह तु तद्युक्तमहर्गृह्यते। तेषु पर्वसूभयोर्दम्पत्योरुपवास: कर्त्तव्य:। अविशेषादुभयोरपि कालयो: प्राप्तावाह- **'औपवस्तमेव कालान्तरे भोजनम्'**- यत्कालान्तरे एकस्मिन् काले भोजनं तदप्यौपवस्तमेव उपवास एव। 'औपवस्तं तूपवास:' निघण्टु:। तदपि दिवा न, रात्रौ; श्रौते तथा दर्शनात्, 'न तस्य सायमश्नीयाद्' इति। (आपस्तम्बधर्मसूत्रम्, हरदत्तमिश्र-कृत उज्ज्वला वृत्ति सहित-२.१.१.४-५)

भारत में आए एक चीनी यात्री ने अपने संस्मरण में लिखा है कि- 'मैंने भारत में देखा- जब किसी व्यक्ति को ज्वर हो जाता है तो वह दो-तीन दिन तक सर्वथा निराहार रहता है तथा स्वस्थ हो जाता है'। इसके पीछे आयुर्वेद का यही सिद्धान्त है कि दोष बढ़ने पर ज्वर होता है और निराहार रहने से जठराग्नि स्वत: दोषों को नष्ट कर शरीर में उनकी साम्यावस्था कर देती है। जिसके परिणामस्वरूप शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ हो जाता है।

अजीर्ण न हो, इसके लिए मितभोजन का विधान किया है। चाणक्य का वचन है- **'मितभोजनं स्वास्थ्यम्'** (चाणक्यसूत्र-२१८)। इसका भाव है कि मिताहार ही स्वास्थ्य है, अर्थात् स्वास्थ्य का मूल कारण है। आचार्य चाणक्य यद्यपि अर्थशास्त्र (राजनीतिशास्त्र) के महान् विद्वान् थे, उनका मुख्य विषय व कार्यक्षेत्र भी राजनीति ही था; परन्तु राजा, मन्त्री व प्रजा- इन सभी के लिए आरोग्य तो पहली आवश्यकता है। अत: आचार्य ने स्वरचित नीतिसूत्रों में आयुर्वेद का सार बहुत ही संक्षिप्त व सारगर्भित शब्दावली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

'जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति' (चाणक्यसूत्र-२२०)

अर्थात् जीर्णभोजी व्यक्ति के पास रोग कभी नहीं फटकते।

'अजीर्णे भोजनं दु:खम्' (चाणक्यसूत्र-२२२)

अजीर्ण में भोजन करना दु:ख है अर्थात् दु:ख का (रोग का) विशेष कारण है। चाणक्य ने इन सूत्रों में पूरे आयुर्वेद का सार समाहित कर दिया है। यदि हम यहां उद्धृत चाणक्य के इन छोटे-छोटे तीन सूत्रों को गम्भीरता से हृदयंगम कर लें तो जीवन भर के लिए अनावश्यक औषधियों के चक्कर व व्यवसायी चिकित्सकों की दासता से मुक्त रहते हुए स्वस्थ जीवन जी सकते हैं।

अजीर्ण से बचने के लिए भारतीय परम्परा में धर्मशास्त्रकारों ने दो काल के भोजन का ही विधान किया है। मनुजी का वचन है-

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः।।

अर्थात् पूर्वाह्ण व सायं दो ही समय भोजन करना वेदविहित है। इनके मध्य में कुछ नहीं खाना चाहिए। इस प्रकार भोजन का विधान अग्निहोत्र के विधान के समान ही है। जैसे अग्निहोत्र दो ही समय किया जाता है, ऐसे ही जठराग्निहोत्र भी दो ही समय करना चाहिए। आपस्तम्ब आदि के धर्मशास्त्रों में गृहस्थ के लिए बल देकर इस विधान की पुष्टि की है कि गृहस्थ केवल दो समय ही भोजन करे, तीसरे समय नहीं[1]।

महाभारत में एक प्रसंग आता है कि युधिष्ठिर शरशय्यागत भीष्म पितामह से प्रश्न करते हैं- पितामह! उपवास की बड़ी महिमा सुनी जाती है, कृपया बताइए उपवास का फल पूर्णतया किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। इसके उत्तर में पितामह का जो वचन था, वह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है-

अन्तरा प्रातराशं च सायमाशं तथैव च।
सदोपवासी स भवेद्यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः।।

(महाभारत, शान्तिपर्व-२२७.१०)

अर्थात् प्रातराश (पूर्वाह्ण-भोजन) तथा सायमाश (सायंकालीन भोजन) के बीच में व्यक्ति यदि कुछ नहीं खाता है तो वह सदा उपवासी माना जाता है। अर्थात् दो समय भोजन करते रहने के उपरान्त भी उपवास का पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है; क्योंकि उपवास का प्रयोजन है- अजीर्ण दूर करना, जो व्यक्ति प्रातः व सायं मित भोजन करता है तथा मध्य में कुछ नहीं खाता,

---

१. **'कालयोर्भोजनम्'**- कालयोरुभयोरपि भोजनं कर्तव्यम्- सायं प्रातश्च, नान्तरेति परिसंख्येयम्, भोजनस्य रागप्राप्तत्वात्। मानवे च स्पष्टमुक्तम्-
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्। नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः।।
इति। (आपस्तम्बधर्मसूत्रम्, हरदत्तमिश्र-कृत उज्ज्वला वृत्ति सहित- २.१.१.२)

उसे कभी अजीर्ण नहीं होता है। इस प्रकार द्विकालभोजी व्यक्ति को सदा उपवास का फल मिलता रहता है। कहा भी है-

वामशायी द्विर्भुञ्जानः षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
व्यायामी ब्रह्मचारी च शतं वर्षाणि जीवति।।

अर्थात् बांयी करवट सोने वाला, दो बार भोजन करने वाला, छह बार मूत्रत्याग करने वाला, दो बार मलत्याग करने वाला, व्यायामशील तथा ब्रह्मचारी (संयमी) व्यक्ति सौ वर्ष तक निरोग रहते हुए सुखपूर्वक जीता है।

भारत में आध्यात्मिक संघों की यह परम्परा रही है कि वे एक कालभोजी होते हैं। ढलती उम्र वाले वानप्रस्थ व संन्यासियों के लिए विधान है कि- **'एककालं चरेद् भैक्षम्'** (मनु.-६.५५) अर्थात् रात-दिन में एक बार ही भिक्षाचरण करना चाहिए। जैन मुनियों के संघ में भी एकाशना (एक काल भोजन करना) के नियम का कठोरता से पालन किया जाता है तथा सूर्यास्त के उपरान्त भोजन सर्वथा वर्जित होता है। आयुर्वेद भी इसका समर्थन करता है-

हृन्नाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचेरपायतः।
अतो नक्तं न भोक्तव्यं वैद्यविद्याविदां वरैः।। (सु.नि.,भोजनविधि-१२)

अर्थात् सूर्य के अस्त होने पर हृदय और नाभिकमल संकुचित हो जाते हैं। अतः रात को खाए भोजन का समुचित पाचन नहीं हो पाता है। इसलिए वैद्यविद्या (आयुर्वेद) को जानने वाले उत्तम विद्वानों द्वारा रात को भोजन करना उचित नहीं माना जाता है।

भगवान् बुद्ध ने भी अपने संघ में एकाहार का नियम निश्चित किया था। गृहस्थ आश्रम से आए कुछ भिक्षुओं ने एक बार बुद्ध से निवेदन किया कि हम एकाहार नहीं कर पाएंगे, क्योंकि हम प्रातः खाते थे, मध्याह्न में खाते थे व सायंकाल भी खाते थे। अतः एकाहार हमारे लिए कठिन है। इस पर

बुद्ध बोले- भिक्षुओ! मेरे समान एकाहारी हो जाओ। एकाहार से भोजन का पाचन सम्यक् होगा, वात, पित्त व कफ- ये तीनों दोष साम्य अवस्था में रहेंगे, भोजनकाल में अच्छी भूख लगेगी, शरीर में लघुता व स्फूर्ति रहेगी। शरीर रोगों से मुक्त रहेगा तथा ध्यान-साधना में विशेष प्रगति होगी। इस पर भिक्षु एकाहारी हो गए तथा उन्होंने स्वयं एकाहार के लाभ का अनुभव किया। आज भी बौद्धभिक्षुओं के संघ में एकाहार के नियम का दृढ़ता से पालन होता है।

योगसाधना करने वालों में यह बात प्रसिद्ध है कि रात्रिभोजन न करने से ध्यानयोग में विशेष प्रगति होती है। इसलिए यह कहावत प्रचलित है- एक बार खाए योगी, दो बार खाए भोगी, तीन बार खाए रोगी। इसका भाव यह है कि जो संसार से विरक्त हैं तथा सांसारिक कार्यों से मुक्त होकर एकान्तवास में केवल ध्यान-भजन करते हैं, विशेष शारीरिक श्रम न करने के कारण ऐसे साधकों के लिए एककाल भोजन पर्याप्त होता है। जो सात्त्विक फलाहार व दुग्धाहार लेते हैं, उनका दो समय आहार लेना भी एकाहार जैसा ही है, क्योंकि फल व दुग्ध में जल की बहुलता होती है और हल्का होने से यह दो समय भी ग्राह्य है। योगसाधना के साथ लोकोपकार में संलग्न पुरुषों के लिए दो समय का सामान्य भोजन मान्य है। इसके अतिरिक्त तीन समय भोजन करने वाले तो प्राय: अजीर्णभोजी ही होते हैं। अजीर्णभोजन ही रोगों का मूल है, अत: उन्हें रोगी कहा गया है।

इस प्रकार एकान्त योगसाधना करने वाले के लिए एककाल-भोजन की परम्परा रही है। गोपीचन्द ने जब गुरु गोरखनाथ से योगदीक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की तो गुरु ने कहा कि माता की अनुमति प्राप्त कर अन्तिम उपदेश भी ले आओ। गोपीचन्द ने जब माता के सामने अपनी इच्छा प्रकट की तो माता ने अपने राजकुमार पुत्र को सहर्ष योगदीक्षा लेने की स्वीकृति दे दी व इस प्रकार से तीन उपदेश-वचन कहे-

पुत्र! सदा दुर्ग में रहना, मोहनभोग का भोजन करना व मशहरी में सोना। इस पर पुत्र ने कहा- माँ! मैं तुम्हारे वचनों का भाव समझ नहीं पाया हूँ। दुर्ग छोड़कर तो संन्यासी बन रहा हूँ, अब दुर्गनिवास कैसे सम्भव होगा। संन्यासी को भिक्षा का रूखा-सूखा भोजन करना होता है, वहां मोहनभोग की उपलब्धि कैसे हो सकती है तथा भ्रमणशील संन्यासी का मशहरी में सोने जैसा सुविधापूर्ण प्रबन्ध भी नहीं होता। इस पर माता ने समझाते हुए कहा- पुत्र! तुम योगदीक्षा ले रहे हो, योगी का प्रथम कर्त्तव्य है- इन्द्रियों व मन पर संयम रखना। संयम ही सबसे बड़ा दृढ़ दुर्ग है। वह ऐसा दुर्ग है, जो तुम्हारे साथ रहेगा व सदा तुम्हारी रक्षा करेगा। इसीलिए कहा है- 'सदा दुर्ग में रहना'।

दूसरे वचन का मर्म यह है कि- योगी को रात-दिन में एक बार भोजन करने का विधान है, उस समय तीव्र भूख में रूखा-सूखा भिक्षा का भोजन भी मोहनभोग जैसा स्वादिष्ठ लगता है। तीसरे वचन का रहस्य यह है कि- तपस्वी योगी को दिन में सोने का निषेध है, कठोर तपस्यामय जीवन व योगाभ्यास से थकने के उपरान्त रात्रि में ऐसी मीठी नींद आती है कि मानो मशहरी में ही सो रहा हो। पुत्र! इन तीन वचनों का पालन करना, तुम्हारा योग अवश्य सिद्ध होगा। इस प्रसंग से योगसिद्धि व आरोग्यसिद्धि दोनों के लिए जीर्णभोजिता की उपादेयता सिद्ध होती है।

आयुर्वेद में अजीर्ण से बचने के लिए भोजन में विशेष सावधानी बरतने के लिए कहा गया है-

हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्।।

(च.सं.नि.-६.११)

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि सदा जितेन्द्रिय रहते हुए हिताशी मिताशी व कालभोजी होवे, क्योंकि विषमाशन से बड़े ही कष्टदायक घोर रोग हो जाते हैं।

अजीर्ण का बड़ा कारण- अत्यशन व अध्यशन-

जिह्वा की रसासक्ति के कारण मात्रा से अधिक भोजन करना अजीर्ण का बहुत बड़ा कारण है। कहा भी है-

अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि।। (माधव., अजीर्ण.-१३)

अर्थात् जो व्यक्ति जिह्वा-लोलुपता के कारण पशुओं की तरह मात्रा से अधिक खा जाते हैं, वे रोग समूह के मूलभूत अजीर्ण से त्रस्त रहते हैं। इस प्रकार स्वाद के चक्कर में अतिभोजन से नाना रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। ध्यान रहे स्वाद वस्तुतः भूख में है, भोज्य पदार्थों में नहीं। इस विषय में विदुरजी का यह वचन विशेष रूप से स्मरणीय है-

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चैवाढ्येषु दुर्लभा।। (विदुरनीति- २.५१)

अर्थात् कठोर श्रम से जीविकोपार्जन करने वाले दरिद्र लोग सदा स्वादिष्ठ भोजन करते हैं, क्योंकि भूख स्वाद पैदा कर देती है और वह धनी लोगों में प्रायः दुर्लभ होती है। चरकसंहिता में कहा है कि-

'यथाग्नि अभ्यवहारोऽग्निसन्धुक्षणानाम्' (च.सं.सू.-२५.४०)

अर्थात् जठराग्नि को दीप्त करने वाले, भूख बढ़ाने वाले उपायों में सबसे बड़ा उपाय यह है कि- जितनी भूख हो, उतना ही भोजन किया जाए, उससे अधिक नहीं। अतिभोजन की निन्दा करते हुए मनुस्मृति में कहा है-

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत् परिवर्जयेत्।। (मनु०-२.५७)

अर्थात् अतिभोजन रोगकारक, उम्र घटाने वाला, रोगरूप दुःख देने वाला होता है। यह अपुण्य का मूल है तथा अधिक खाने वाला व्यक्ति

समाज का द्वेषपात्र बन जाता है, क्योंकि वह दूसरों का भाग भी खा जाता है। अत: अतिभोजन से सदा बचना चाहिए। वैद्यराज सुषेण ने भी कहा है-

य: क्षुधा लौल्यभावेन कुर्यादाकण्ठभोजनम्।
सुप्तव्यालानिव व्याधीन् सोऽनर्थाय प्रबोधयेत्।। (सु.नि., भोजनविधि)

अर्थात् जो रसासक्ति से गले तक भोजन कर लेता है, मात्रा से बहुत अधिक खा लेता है, मानो वह शरीर में सोए रोगरूपी सर्पों को अपने अनर्थ के लिए जगा देता है।

अतिभोजन के अतिरिक्त अजीर्ण का एक बड़ा कारण अध्यशन है। इसका अभिप्राय है- खाए के ऊपर पुन: खाना अर्थात् पूर्वभोजन के पचे बिना ही असमय में कुछ न कुछ खाते रहना। यह स्वास्थ्य के लिए बहुत ही घातक व हानिकारक प्रवृत्ति है। चरकसंहिता में इसे पाचनतन्त्र को विकृत करने वाले कारणों में सबसे बड़ा कारण माना है-

'अजीर्णाध्यशनं ग्रहणीदूषणानाम्।' (च.सं.सू.-२५.४०)

अत: हमें अपने बच्चों व अन्य परिवारजनों को आरम्भ से ही यह बात अच्छी तरह समझा देनी चाहिए कि बार-बार खाने की आदत स्वास्थ्य के लिए सबसे अधिक घातक है। बच्चों को विशेषरूप से बाल्यकाल से ही समय पर ही भोजन करने की आदत डालनी चाहिए, जिससे वे इस सुनहरे नियम का पालन कर जीवन भर स्वस्थ रह सकें।

खाए के ऊपर बार-बार खाते रहने के दोष को आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काश्यप-संहिता' में इस प्रकार समझाया है-

'विरुद्धाध्यशनाजीर्णादामे चामे च पूरणात्'। (का.सं., खिल.-१६.७)

'यत्किञ्चिदशितं पीतं देहिनस्तद्विदह्यति'। (का.सं., खिल.-१६.८)

विदग्धं शुक्ततां याति शुक्तमामाशये स्थितम्।
तदम्लपित्तमित्याहुर्भूयिष्ठं पित्तदूषणात्।। (का.सं., खिल.-१६.९)

विरुद्ध (मात्राविरुद्ध तथा संयोगविरुद्ध) भोजन, अध्यशन (अजीर्ण-भोजन) तथा शरीर में आम रस (अपक्व आहार रस) के रहने पर पुनः पुनः भोजन करने से जो कुछ खाया-पिया जाता है, वह विदग्ध (खट्टा) हो जाता है। पुनः वह विदग्ध शुक्तता (तीक्ष्ण अम्लता) को प्राप्त होकर आमाशय में स्थित होता है। यह अम्लपित्त (एसिडिटी) की स्थिति होती है।

अविशुष्के यथा क्षीरं प्रक्षिप्तं दधिभाजने।
क्षिप्रमेवाम्लतामेति कूर्चीभावं च गच्छति।। (का.सं., खिल.-१६.१०)

इस पर भी नासमझ जिह्वालोलुप व्यक्ति अजीर्ण में खाता रहता है। जिस प्रकार अच्छी तरह बिना सूखे दही के पात्र में यदि दूध डाल दिया जाए तो वह तुरन्त खट्टा हो जाता है तथा कूर्चीभाव (दधिरूपता) को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार रस धातु के अम्ल होने पर जो कुछ भी भोजन किया जाता है, वह उसमें मिलकर विदग्ध हो जाता है। इससे प्रबल अम्लपित्त अर्थात् हाइपर एसिडिटी बन जाती है। इस प्रकार अजीर्णाध्यशन ही पाचनतन्त्र को विकृत करने का सबसे बड़ा कारण बनता है। विदग्धाजीर्ण होने से उसकी रस-रक्त आदि धातुएं नहीं बनती हैं। शरीर कृश व निस्तेज हो जाता है। अतः अजीर्णाध्यशन के इस घातक व्यसन से बचना चाहिए।

एक सामान्य उदाहरण से भी इस बात को समझा जा सकता है। दाल पकाते समय व्यक्ति यथोचित मात्रा में दाल के साथ पानी आदि डालकर निरन्तर पकाता रहता है तो दाल ठीक पक जाती है। यदि वह एक बार दाल चढ़ाने पर थोड़ी-थोड़ी देर में ऊपर से दाल डालता रहेगा तो कितनी भी अच्छी भट्ठी क्यों न हो, दाल ठीक से नहीं पक सकेगी। यही स्थिति जठराग्नि की है। उसे एक बार आहारमात्रा देने के उपरान्त अगले भोजनकाल तक कुछ नहीं खाना चाहिए। हाँ, आवश्यकतानुसार जल पीते रहना चाहिए। इससे भोजन का सम्यक् परिपाक होगा, अन्यथा नहीं।

चरकसंहिता में अजीर्ण के विषय में कहा गया है कि- उद्धार्य अर्थात् तुरन्त ही जागरूकतापूर्वक दूर किए जाने वाले दोषों में अजीर्ण सबसे प्रमुख है। इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए-

अजीर्णमुद्धार्याणाम् (च.सं.सू.-२५.४०)

इसके अतिरिक्त सुश्रुतसंहिता के रसायन-प्रकरण में जीर्णभोजिता को स्वास्थ्य के लिए अतीव हितकर बताया है-

आयुष्यं भोजनं जीर्णे वेगानां चाविधारणम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च साहसानां च वर्जनम्।। (सु.सं.सू.-२८.२८)

अर्थात् पूर्वभोजन के जीर्ण होने पर भोजन करना, मल-मूत्र आदि के वेगों को न रोकना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, अहिंसा को अपनाना व साहसों का त्याग अर्थात् अपनी शक्ति से अधिक कार्य न करना तथा बिना विचारे सहसा किए जाने वाले क्रोधपूर्ण दुस्साहसिक कार्य न करना, ये सब आयुष्य हैं अर्थात् दीर्घायु प्रदान करने वाले कारण हैं। यहाँ यह विशेषरूप से अवधेय है कि इनमें जीर्णभोजिता को सबसे पहले रखा है। इससे इसका विशिष्ट महत्त्व द्योतित होता है।

-आचार्य बालकृष्ण

आयुर्वेद में वर्णित अजीर्ण का स्वरूप, कारण व भेद

अजीर्ण का स्वरूप-

अविपक्वोऽग्निमान्द्येन यो रसः स निगद्यते।
रोगाणां प्रथमो हेतुः सर्वेषामामसंज्ञया।।

(योगरत्नाकर, अजीर्णनिदानम्-१)

जठराग्नि की मन्दता के कारण भोजन का बिना पचा हुआ शेष रस 'आम' (अजीर्ण) कहलाता है। यह 'आम' ही सब रोगों का प्रथम कारण होता है।

अजीर्ण के मुख्य कारण-

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य।।

(सु.सं.सू.-४६.५००)

बहुत अधिक जल पीना, विषम आहार लेना अर्थात् कभी कम कभी अधिक, कभी समय पर कभी असमय पर तथा कभी संयोगविरुद्ध व अहितकर आहार करना, मलमूत्र आदि वेगों को धारण करना, समुचित निद्रा न लेना, इन कारणों से समय पर अनुकूल और लघु भोजन भी समुचित रूप से नहीं पचता है अर्थात् अजीर्ण हो जाता है।

ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न पाकं भजते नरस्य।।

(सु.सं.सू.-४६.५०१)

ईर्ष्या (परसम्पत्ति की असहिष्णुता) भय, क्रोध से व्याप्त एवं लोभ, शोक, दैन्य (दीनता) तथा प्रद्वेष (मत्सरता) से आक्रान्त व्यक्ति के द्वारा सेवित किया जाता हुआ अन्न सम्यक् प्रकार से नहीं पचता है।

व्यायाम व निद्रा का अभाव भी अजीर्ण का बड़ा कारण है। जैसा कि वैद्यराज सुषेण ने कहा है-

स्थाल्यां यथाऽनावरणाननायां न घट्टितायां न च साधुपाकः।
अनाप्तनिद्रस्य तथा नरेन्द्र ! व्यायामहीनस्य न चान्नपाकः।।

(सु.नि., व्यायामोद्वर्त्तनाभ्यंगगुणवर्ग:-७)

जैसे ढ़क्कनरहित स्थाली (देगची/बटलाई) में डाला गया अन्न करछी से बिना चलाये ठीक प्रकार से नहीं पकता है। हे राजन् ! उसी प्रकार नींद न लेने वाले तथा व्यायाम न करने वाले व्यक्ति का खाया हुआ अन्न भी नहीं पचता है।

अजीर्ण के भेद-

अजीर्णप्रभवा रोगास्तदजीर्णं चतुर्विधम्।
आमं विदग्धं विष्टब्धं रसशेषं चतुर्थकम्।।

प्राय: सभी रोग अजीर्णप्रभव (अजीर्ण से उत्पन्न होने वाले) होते हैं। अजीर्ण चार प्रकार का माना जाता है- आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण व रसशेषाजीर्ण।

आमाजीर्ण में कफ की अधिकता से अग्निमान्द्य रहता है। इसमें खाया हुआ अन्न 'आम' (अपक्व) रहता है, अत: इसका नाम आमाजीर्ण है। विदग्धाजीर्ण में पित्त की अधिकता से अग्निमान्द्य रहता है। इसमें खाया हुआ अन्न अम्ल (एसिड) रूप में परिणत हो जाता है, अत: इसे विदग्धाजीर्ण कहते हैं। विष्टब्धाजीर्ण में वात की अधिकता से अग्निमान्द्य रहता है। इसमें खाया हुआ अन्न विष्टब्ध अर्थात् उदर में स्तम्भित होकर पड़ा रहता है तथा अपच बनी रहती है, अत: इसे विष्टब्धाजीर्ण कहते हैं। रसशेषाजीर्ण में दूसरे आहार-काल तक पूर्वभोजन का बिना पचा रस शेष रहता है तथा भोजन की इच्छा नहीं होती है।

आमाजीर्ण के लक्षण-

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोफो गण्डाक्षिकूटजः।
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्तते।। (माधव., अजीर्ण.-९)

आमाजीर्ण में शरीर में भारीपन, उत्क्लेद (वमन की इच्छा), कपोल (गाल) तथा अक्षिकूट (आंखों के किनारों पर) सूजन होती है तथा खट्टेपन से रहित डकारें आती हैं। भाव यह है कि आमाशय में क्लेदक कफ की अधिकता होने से प्रारम्भ में खाए अन्न पर अम्लरस का प्रभाव नहीं पड़ता, अन्न में माधुर्य होने से डकारें खट्टी नहीं होती।

विदग्धाजीर्ण का लक्षण-

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः।
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते।। (माधव., अजीर्ण.-१०)

विदग्धाजीर्ण पित्तजन्य होता है। इसमें भ्रम, प्यास, मूर्छा तथा अनेक प्रकार के पित्तज विकार होते हैं। खट्टी डकारों के साथ मुंह से धुंआ-सा निकलता है। स्वेद और दाह विशेष रूप से होते हैं।

विष्टब्धाजीर्ण का लक्षण-

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम्।। (माधव., अजीर्ण.-११)

यह वातजन्य होता है। इसमें शूल, आध्मान, तोद, भेद आदि विविध प्रकार की वातिक वेदनाएं होती हैं। इसमें मल और अधोवायु की अप्रवृत्ति, स्तब्धता, मूर्छा तथा अंगों में पीड़ा आदि लक्षण होते हैं।

रसशेषाजीर्ण का लक्षण-

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः।। (सु.सं.सू.-४६.४९९)

त्रिभिरित्येकैकशो न तु मिलितैः। रसशेषतः भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो द्रवः। स चापक्वो रसशेषः, तस्मात् चतुर्थमजीर्णं न त्वामाजीर्णम्। ननु आमाजीर्णात् रसशेषस्य को भेदः? आमं मधुरतां गतम् अपक्वमन्नमेव। रसशेषस्तु भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रवः, स च अपक्वः इति भेदः।

(आयुर्वेदाब्धिसारः, प्रथमभागः-९८६)

क्रमशः कफ, पित्त एवं वात से पृथक् पृथक् रूप से- आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण एवं विष्टब्धाजीर्ण होते हैं। कुछेक (सुश्रुत आदि मनीषी) रसशेष के कारण होने वाले रसशेषाजीर्ण नामक चतुर्थ भेद को भी मानते हैं। रसशेषाजीर्ण आमाजीर्ण से भिन्न है। आमाजीर्ण में अपक्व अन्न ही मधुरता युक्त होकर बिना पचे पड़ा रहता है, जबकि रसशेषाजीर्ण में पचे हुए अन्न का सारभूत रस अपक्व अवस्था में रहता है।

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे। (माधव., अजीर्ण.-१२)

रसशेषाजीर्ण होने पर हृदय में गुरुता, अशुद्धि और भोजन में अरुचि होती है।

अजीर्ण के उपद्रव-

मूर्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः।। (सु.सं.सू.-४६.५०४)

मूर्छा, प्रलाप, वमन, मुंह से पानी आना, अंगों में पीड़ा, दुर्बलता तथा भ्रम- ये अजीर्ण के उपद्रव हैं। अजीर्ण के बढ़ने पर मृत्यु तक हो सकती है।

अजीर्ण-निवारण के सरल उपाय-

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम्।
तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति।। (वृन्दमाधव-६.२६)

आहार की विषमता अर्थात् अतिभोजन, अकालभोजन, अजीर्णभोजन, विरुद्धभोजन आदि से मनुष्यों को अजीर्ण हो जाता है। यह नाना रोगों का

मूल है। इसके नष्ट होने से एतन्मूलक रोग भी नष्ट हो जाते हैं। अत: अजीर्ण-निवारण के लिए हिताहार व मिताहार के प्रति विशेषरूप से जागरूक रहना चाहिए।

अनात्मवन्त: पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणत:।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि।। (माधव., अजीर्ण.-१३)

अर्थात् जो व्यक्ति जिह्वा-लोलुपता के कारण पशुओं की तरह मात्रा से अधिक खा जाते हैं, वे रोग समूह के मूलभूत अजीर्ण से त्रस्त रहते हैं। अत: अजीर्ण-निवारण हेतु भोजन में संयम रखना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

तत्रामे लंघनं कार्यं विदग्धे वमनं हितम्।
विष्टम्भे स्वेदनं पथ्यं रसशेषे शयीत च।। (सु.सं.सू.-४६.५०७)

आमाजीर्ण में लंघन, विदग्धाजीर्ण में वमन व विष्टब्धाजीर्ण में स्वेदन हितकर होता है। रसशेषाजीर्ण में उपवास के साथ शयन करना चाहिए। **आमाजीर्ण** को दूर करने वाला एक उत्तम योग (नुस्खा) प्रसिद्ध है-

धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद् विचक्षण:।
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम्।। (चिकित्सातिलकम्-१८.२७)

धनियां व सौंठ से सिद्ध जल आमाजीर्ण को शान्त कर देता है। यह शूलहर व वस्तिशोधक भी होता है। **विदग्धाजीर्ण** को दूर करने का एक उत्तम उपाय मुनिवर सुश्रुत ने इस प्रकार बताया है-

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं
शीताम्बुना वै परिपाकमेति।
तद्ध्यस्य शैत्येन निहन्ति पित्त-
माक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात्।। (सु.सं.सू.-४६.५१०)

शीतल जल पीने से विदग्ध अर्थात् अम्ल रूप में परिणत/एसिड से युक्त हुआ अन्न शीघ्र पच जाता है, क्योंकि जल की शीतलता से पित्त

शान्त हो जाता है और जल के आक्लेदी भाव (आर्द्रता) के कारण वह पक्वाशय में जाकर निर्विघ्न रूप से पच जाता है। विष्टब्धाजीर्ण व रसशेषाजीर्ण को दूर करने का सरल उपाय इस प्रकार है-

स्वेदं कुर्याच्च विष्टब्धे पिबेद्वा लवणोदकम्।
रसशेषे दिवानिद्रां लंघनं वातवर्जनम्।।

(आयुर्वेदाब्धिसार:-१.१०१४)

विष्टब्धाजीर्ण में स्वेदन करना चाहिए तथा सैन्धव लवण युक्त पानी पीना चाहिए। रसशेषाजीर्ण में लंघन (उपवास) करते हुए निवात स्थान में दिन में सोना चाहिए।

यदि व्यक्ति सदा जीर्णभोजिता को अपना ले, तो उसे अजीर्ण होने का भय नहीं रहता है। अत: सदा पूर्वभोजन के जीर्ण होने पर ही अगला भोजन करना चाहिए, अन्यथा लंघन कर लेना चाहिए। इस विषय में प्रमाद करने से अजीर्ण व तज्जन्य रोगों को अवसर मिल जाता है। कहा भी है-

प्राग्भुक्ते त्वविविक्तेऽग्नौ द्विरन्नं न समाचरेत्।
पूर्वभुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति पावकम्।। (सु.सं.सू.-४६.४९२)

पहले खाए अन्न के अच्छी तरह से पच जाने पर ही भोजन करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो पूर्वभोजन के विदग्ध (बिना पचे व अम्लीभूत) रहने पर ऊपर से भोजन करने वाला अपनी जठराग्नि को क्षीण कर लेता है। पूर्वभोजन जीर्ण हो गया है, इसकी पहचान निम्न लक्षणों से की जा सकती है-

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचित:।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम्।। (माधव., अजीर्ण.-१३)

शुद्ध डकार आना, मन में उत्साह होना, उचित रूप से मल-मूत्र का विसर्जन होना, शरीर में हल्कापन (स्फूर्ति) व भूख-प्यास लगना- ये जीर्ण आहार के लक्षण हैं। इनके होने पर ही भोजन करना चाहिए।

भोजन-विधि

भोजन सम्बन्धी २४ विकल्प (विशिष्ट विधान)

काश्यपसंहिता-खिलस्थानम्, भोज्योपक्रमणीयाध्याय: पञ्चम:

अजीर्ण रोगों का मूल है तथा अजीर्ण का मूल है -भोजन की अनियमितता। इससे बचने के लिए ऋषियों ने भोजन-विधि का उपदेश किया है। यहाँ महर्षि कश्यप द्वारा उपदिष्ट भोजन-विधि काश्यपसंहिता से उद्धृत कर प्रस्तुत की जा रही है। इसके अनुसार भोजन करने वाला व्यक्ति कभी अजीर्ण व अन्य रोगों से ग्रस्त नहीं होता है।

अथातो भोज्योपक्रमणीयं नामाध्यायं व्याख्यास्याम:।।१।।
इति ह स्माह भगवान् कश्यप:।।२।।

अब हम भोज्योपक्रमणीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे, ऐसा परम ज्ञानी कश्यप महर्षि ने कहा था।

अथ खल्वस्माभि: पूर्वं यद्रसविमानेऽभिहितं कालादिचतुर्विंशति-विधमाहारमानम्, तस्येदानीं प्रतिविकल्पविशेषानुपदेक्ष्याम:। किं कारणम्? न ह्याहारादृते प्राणिनां प्राणाधिष्ठानं किञ्चिदप्युपलभामहे। स सम्यगुपयुज्यमानो जीवयति, सर्वेन्द्रियाणि ह्लादयति, धातूनाप्याययति, स्मृतिमतिसर्वबलौजांस्यू-र्जयति, वर्णप्रसादं चोपजनयति; असम्यगुपयुज्यमानस्त्वसुखेनोपयोजयति।

तस्मात् काले सात्म्यं मात्रावदुष्णं स्निग्धमविरोधि शुचौ देशे शुचिषु पात्रेषु शुचिपरिचरेणोपनीतं प्राङ्मुखस्तूष्णींस्तन्मना आस्वादयन्नातिद्रुतं नातिविलम्बितं नात्युष्णं नातिशीतं नातिरूक्षं नातिस्निग्धं नातिबहु नातिस्तोकं नातिद्रवं नातिशुष्कं नाकांक्षितो न प्रतान्तो नैकरसं वारोग्यायुर्बलार्थी समश्नीयात्।।३।।

महर्षि कश्यप कहते हैं- हमने पहले **'रसविमान'** में काल आदि २४ प्रकार का जो आहारमान कहा है, अब हम उसके विशेष विकल्पों अर्थात् भेदों का कथन करेंगे, क्योंकि आहार के बिना किञ्चिन्मात्र भी प्राणियों के प्राण स्थिर नहीं रहते हैं। यदि आहार का अच्छी प्रकार से प्रयोग किया जाए तो वह जीवन प्रदान करता है, सम्पूर्ण इन्द्रियों को प्रसन्न करता है, धातुओं की वृद्धि करता है, स्मृति, बुद्धि, सब प्रकार के बल तथा ओज को बढ़ाता है तथा वर्ण को निखारता है। इसके विपरीत यदि आहार का अच्छी प्रकार प्रयोग न किया जाए तो वह मनुष्य को दु:खों से युक्त करता है।

इसलिए आरोग्य, आयु तथा बल को चाहने वाले व्यक्ति को निम्न निर्देशों के अनुसार भोजन करना चाहिए-

१. उचित काल में भोजन करें।
२. सात्म्य भोजन करें।
३. उचित मात्रा में भोजन करें।
४. उष्ण भोजन करें।
५. स्निग्ध भोजन करें।
६. जो विरुद्ध न हो, ऐसा भोजन करें।
७. पवित्र स्थान में, पवित्र पात्रों (बर्तनों) में,
पवित्र परिचारक द्वारा लाया गया भोजन करें।
८. पूर्व दिशा की ओर मुख करके भोजन करें।
९. शान्त होकर भोजन करें।
१०. अच्छी प्रकार मन लगाकर दत्तचित्त होकर भोजन करें।
११. स्वादपूर्वक भोजन करें।
१२. न अत्यन्त शीघ्रता से भोजन करें।
१३. न अत्यन्त धीरे-धीरे भोजन करें।
१४. न अत्यन्त उष्ण भोजन करें।

१५. न अत्यन्त शीत भोजन करें।
१६. न अत्यन्त रूक्ष भोजन करें।
१७. न अत्यन्त स्निग्ध भोजन करें।
१८. न बहुत अधिक परिमाण में भोजन करें।
१९. न बहुत स्वल्प परिमाण में भोजन करें।
२०. न अत्यन्त द्रव भोजन करें।
२१. न अत्यन्त शुष्क भोजन करें।
२२. न भोजन के प्रति अनिच्छा होने पर भोजन करें।
२३. न निरन्तर व बार-बार भोजन करें तथा-
२४. न केवल एक रस वाला भोजन करें।

भवन्ति चात्र-

आरोग्यं दोषसमता सर्वाबाधनिवर्तनम्।
तदर्थमृषयः पुण्यमायुर्वेदमधीयते।।४।।

दोषों का समावस्था में होना तथा सर्वविध रोगों की निवृत्ति 'आरोग्य' कहलाता है। इस आरोग्य के लिए ही ऋषि लोग पुण्य (पवित्र) आयुर्वेद का अध्ययन करते हैं।

रसायनानि विधिवत्तदर्थं चोपयुज्जते।
धर्मार्थकाममोक्षाणामवाप्तिश्च तदाश्रया।।५।।
तदात्मवांस्तदर्थाय प्रयतेत विचक्षणः।

उस आरोग्य के लिए ही विधिवत् रसायनों का प्रयोग किया जाता है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदि चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति भी आरोग्य से ही होती है। चरकसंहिता के अनुसार- आरोग्य दान के द्वारा वैद्य धर्म, अर्थ, काम तथा अभ्युदय एवं निःश्रेयस (मोक्ष) का दाता बन जाता है[१]।

१. धर्मस्यार्थस्य कामस्य नृलोकस्योभयस्य च। दाता सम्पद्यते वैद्यो दानाद्देहसुखायुषाम्।।
(च.सं.सू.-१६.३८)

निर्बल पुरुष जहां भौतिक अर्थ एवं काम की प्राप्ति में असमर्थ रहता है, वहां वह धर्म तथा मोक्ष से भी वञ्चित रहता है। इसलिए बुद्धिमान् तथा आत्मवान् (जितेन्द्रिय मनुष्य) को आरोग्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च।।६।।
स्रष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य च लाघवम्।
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधनम्।।७।।
बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्यं समाग्निता।
विद्यादारोग्यलिङ्गानि विपरीते विपर्ययम्।।८।।

आरोग्य के लक्षण- अन्न में रुचि, खाए हुए अन्न का सुखपूर्वक परिपाक हो जाना, मल-मूत्र तथा वायु का निकलना, शरीर की लघुता, इन्द्रियों की प्रसन्नता, सुखपूर्वक सोना तथा जागना, बल, वर्ण तथा आयु की प्राप्ति, मन की प्रसन्नता तथा अग्नि की समता- ये आरोग्य के लक्षण हैं। अनारोग्य (अस्वस्थता) में इससे विपरीत लक्षण होते हैं।

आरोग्यं भोजनाधीनं भोज्यं विधिमपेक्षते।
विधिर्विकल्पं भजते विकल्पस्तु प्रवक्ष्यते।।९।।

आरोग्य (स्वास्थ्य) भोजन पर निर्भर होता है तथा भोजन विधि की अपेक्षा रखता है। भोजनविधि उसके विकल्प पर आश्रित होती है, इसलिए हम भोजन के विकल्पों (विविध विधानों) का व्याख्यान करेंगे।

स्वस्थानस्थेषु दोषेषु स्रोतःसु विमलेषु च।
जातायां च प्रकाङ्क्षायामन्नकालं विदुर्बुधाः।।१०।।

अन्न का काल- दोषों के अपने स्थान में स्थित होने पर, स्रोतों के मल रहित हो जाने पर तथा भोजन के प्रति इच्छा जागृत होने पर विद्वान् लोग अन्न का काल कहते हैं। अर्थात् जब तक दोष अपने स्थान में स्थित न हों, स्रोत मल रहित न हों तथा भोजन की इच्छा उत्पन्न न हो तब तक अन्न का सेवन नहीं करना चाहिए।

कालेऽश्नतोऽन्नं स्वदते तुष्टिः पुष्टिश्च वर्धते।
सुखेन जीर्यते न स्युः प्रतान्ताजीर्णजा गदाः।।११।।

अब भोजन के २४ विकल्पों का व्याख्यान किया जाएगा।

उचित काल- समुचित काल में खाया हुआ अन्न स्वादु लगता है, मन को सन्तुष्ट करता है तथा शरीर को पुष्ट करता है। उचित काल पर सेवित अन्न सुखपूर्वक जीर्ण हो जाता है तथा प्रतान्त/बार-बार भोजन के करने एवं अजीर्ण से उत्पन्न होने वाले रोग नहीं होते हैं। सुश्रुत में भी कहा है- **'काले भुक्तं प्रीणयति'** (सु.सं.सू.- ४६.४६६)।

सात्म्यं नामाहुरौचित्यं सातत्येनोपसेवितम्।
आहारजातं यद्यस्य चानुशेते स्वभावतः।।१२।।

सात्म्य- सात्म्य औचित्य को कहते हैं। निरन्तर सेवन किया जाता हुआ जो आहार स्वाभाविक रूप से जिसके अनुकूल होता है, उसे उसके लिए सात्म्य कहते हैं। चरकसंहिता में कहा है- **'सात्म्यं नाम तद् यदात्मन्युपशेते, सात्म्यार्थो ह्युपशयार्थः'** (च.सं.वि.- १.२०) अर्थात् सात्म्य उसे कहते हैं जो अपने लिए सुखकर हो। सात्म्य और उपशय परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं।

सात्म्याशी सात्म्यसाद्गुण्याच्छतं वर्षाणि जीवति।
न चाप्यनुचिताहारविकारैरुपसृज्यते।।१३।।

सात्म्य का सेवन करने वाला व्यक्ति सात्म्य के साद्गुण्य (श्रेष्ठ गुणों) के कारण सौ वर्ष तक जीवित रहता है तथा उसे अनुचित आहार से उत्पन्न होने वाले विकार नहीं होते हैं। सुश्रुतसंहिता में कहा है- **'सात्म्यमन्नं न बाधते'** (सु.सं.सू.- ४६.४६६) अर्थात् सात्म्य अन्न शरीर में किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुंचाता है।

लघूनां नातिसौहित्यं गुरूणामल्पशस्तथा।
मात्रावदश्नतो भुक्तं सुखेन परिपच्यते।।१४।।
स्वस्थयात्राग्निचेष्टानामविरोधि च तद्भवेत्।

उचित मात्रा- लघु पदार्थों को भी अत्यन्त सौहित्य से अर्थात् अति तृप्ति-पूर्वक नहीं खाना चाहिए तथा गुरु पदार्थों को भी अल्प मात्रा में सेवन करना चाहिए। इस प्रकार उचित मात्रा में भोजन करने वाले का खाया हुआ अन्न सुखपूर्वक पच जाता है तथा वह शरीर की स्वस्थयात्रा (स्वस्थ व्यक्ति के दैनिक कार्य), जठराग्नि तथा शरीर की चेष्टाओं का विरोधी नहीं होता।

चरकसंहिता (मात्राशितीय अध्याय) में भी कहा है कि भोजन मात्रा में ही करना चाहिए। भोजन की मात्रा व्यक्ति के अग्निबल के अनुसार होती है। जितना भोजन यथासमय सुखपूर्वक पच जाए, उतनी ही आहारमात्रा समझनी चाहिए। यह प्रत्येक व्यक्ति की सामर्थ्य के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। अत: सभी के लिए कोई एक समान मात्रा निर्धारित नहीं की जा सकती है। उचित मात्रा में सेवित गुरु भोजन भी पचने में लघु हो जाता है तथा इसके विपरीत लघु भोजन भी यदि अधिक मात्रा में लिया जाए तो वह पचने में गुरु (भारी) हो जाता है। इसलिए प्रत्येक द्रव्य मात्रा की अपेक्षा रखता है। इसीलिए सुश्रुतसंहिता में भी कहा है- **'सुखं जीर्यति मात्रावत्'** (सु.सं.सू.- ४६.४६८) अर्थात् मात्रा के अनुसार किया हुआ भोजन सुखपूर्वक जीर्ण हो जाता है तथा धातुसाम्य करता है।

उष्णं हि भुक्तं स्वदते श्लेष्माणं च जयत्यपि।।१५।।
वातानुलोम्यं कुरुते क्षिप्रमेव च जीर्यते।
अन्नाभिलाषं लघुतामग्निदीप्तिं च देहिनाम्।।१६।।

उष्ण भोजन- उष्ण भोजन खाने में स्वादिष्ठ लगता है, श्लेष्मा (कफ) को शान्त करता है, वायु का अनुलोमन करता है, शीघ्र ही जीर्ण हो जाता है, अन्न में रुचि उत्पन्न करता है, शरीर में लघुता (स्फूर्ति) लाता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। मुनिवर सुश्रुत भी कहते हैं कि- **'स्निग्धोष्णं बलवह्निदम्'** (सु.सं.सू.- ४६.४६७) अर्थात् स्निग्ध व उष्ण भोजन बलप्रद व जठराग्निदीपन होता है।

स्निग्धं प्रीणयते देहमूर्जयत्यपि पौरुषम्।
करोति धातूपचयं बलवर्णौ दधाति च।।१७।।

स्निग्ध भोजन- स्निग्ध भोजन शरीर को संतृप्त करता है, पौरुष को बढ़ाता है, धातुओं की वृद्धि करता है, बल बढ़ाता है तथा शरीर का वर्ण (रंग) निखारता है।

सुमृष्टमपि नाश्नीयाद्विरुद्धं यद्धि देहिनः।
प्राणानस्याऽऽशु वा हन्यात्तुल्यं मधुघृतं यथा।।१८।।
अविरुद्धान्नभुक् स्वास्थ्यमायुर्वर्णं बलं सुखम्।
प्राप्नोति, विपरीताशी तेषामेव विपर्ययम्।।१९।।

अविरुद्ध भोजन- अच्छी प्रकार स्वादिष्ठ बनाया हुआ भी विरुद्ध भोजन नहीं करना चाहिए। विरुद्ध भोजन शीघ्र ही प्राणियों के प्राणों को नष्ट कर देता है, जिस प्रकार समान मात्रा में मधु और घृत का सेवन। अविरुद्ध अन्न का सेवन करने वाला व्यक्ति स्वास्थ्य, आयु, वर्ण, बल तथा सुख को प्राप्त करता है। इससे विपरीत विरुद्ध अन्न का सेवन करने वाला व्यक्ति उपर्युक्त गुणों से विपरीत स्थिति प्राप्त करता है, अर्थात् उसके आयु, वर्ण, बल तथा सुख का ह्रास हो जाता है।

शुचिपात्रोपचरणः शुचौ देशे शुचिः स्वयम्।
भुञ्जानो लभते तुष्टिं पुष्टिं तेनाधिगच्छति।।२०।।
नानिष्टैरमनस्यैर्वा विघातं मनसोर्च्छति।
तस्मादनिष्टे नाश्नीयादायुरारोग्यलिप्सया।।२१।।

स्वच्छतापूर्ण भोजन- पवित्र पात्रों व पवित्र स्थान में भोजन करना चाहिए। स्वयं भी स्नान आदि द्वारा पवित्र होकर भोजन करना चाहिए। इससे व्यक्ति संतुष्टि प्राप्त करता है तथा शरीर को आह्लाद व पोषण मिलता है। जो इष्ट न हो तथा मन को रुचिकर न हो, ऐसी रीति से आहार ग्रहण न करे, अन्यथा मन का विघात होता है। आयु तथा आरोग्य चाहने

वाले व्यक्ति को ऐसे स्थान पर भोजन नहीं करना चाहिए जो इष्ट (मनोनुकूल) न हो।

प्राङ्मुखोऽश्नन्नरो धीमान् दीर्घमायुरवाप्नुते।
तूष्णीं सर्वेन्द्रियाह्लादं मनःसात्म्यं च विन्दति।।२२।।

पूर्वाभिमुख होकर भोजन करना- पूर्व दिशा की ओर मुख करके भोजन करने वाला बुद्धिमान् व्यक्ति दीर्घ आयु को प्राप्त करता है। **शान्त (चुपचाप) होकर भोजन** करने वाला व्यक्ति सब इन्द्रियों की प्रसन्नता तथा मन की सात्म्यता (अनुकूलता) को प्राप्त करता है।

एतदेव च मात्रां च पक्तिं युक्तिं च तन्मनाः।
तस्मात्तत्प्रवणोऽजल्पन् स्वस्थो भुञ्जीत भोजनम्।।२३।।

तन्मना होकर भोजन करना- तन्मय (दत्तचित्त) होकर भोजन करने वाला व्यक्ति पूर्वोक्त गुणों को प्राप्त करता है एवं मात्रा, पाचन शक्ति तथा युक्ति का ध्यान रखता है। इसलिए स्वस्थ व्यक्ति को भोजन में मन लगाकर तथा जल्पन (अधिक वार्तालाप) न करते हुए भोजन करना चाहिए।

आस्वाद्यास्वाद्य योऽश्नाति शुद्धजिह्वेन्द्रियो रसान्।
स वेत्ति रसनानात्वं विशेषांश्चाधिगच्छति।।२४।।

आस्वादनपूर्वक भोजन करना- जो शुद्ध रसनेन्द्रिय वाला मनुष्य अच्छी प्रकार रसों का स्वाद ले लेकर भोजन करता है, वह भोजनगत रसों की विविधता का अनुभव अच्छी प्रकार से करता है तथा उनके गुणों को प्राप्त कर लेता है।

अतिद्रुतं हि भुञ्जानो नाहारस्थितिमाप्नुयात्।
भोज्यानुपूर्वीं नो वेत्ति न चान्नरससम्पदम्।।२५।।
नातिद्रुताशी तत्सर्वमनूनं प्रतिद्यते।
प्रसादमिन्द्रियाणां च तथा वातानुलोमताम्।।२६।।

अतिद्रुत भोजन न करना- अति शीघ्र भोजन करने से आहार अपनी स्थिति में नहीं पहुंचता है। वह भोज्यानुपूर्वी अर्थात् भोजन की क्रमिकता (कौन-सा पदार्थ पहले तथा कौन-सा पश्चात् खाना चाहिए, इस प्रकार की आनुपूर्वी) को नहीं जान पाता है। शीघ्रता के कारण अन्नरस की उत्कृष्टता (गुणसम्पदा) का अनुभव नहीं कर पाता है। जबकि अतिशीघ्रता को छोड़ धीरजपूर्वक (शान्ति से) भोजन करने वाला व्यक्ति उक्त सभी गुणों को अच्छी तरह से प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार भोजन करने से उसकी इन्द्रियाँ प्रसन्न होती हैं तथा वात का अनुलोमन (मलद्वार से निर्गमन) हो जाता है।

शीतीकरोति चान्नाद्यं भुञ्जानोऽतिविलम्बितम्।
भुङ्क्ते बहु च शीतं च न तृप्तिमधिगच्छति।।२७।।
शैत्याद्बहुत्वाद्वैरस्याद् भुक्तं क्लेशेन पच्यते।

अति विलम्बपूर्वक भोजन न करना- बहुत धीरे-धीरे भोजन करने से सारा अन्न शीतल हो जाता है। अन्न अधिक मात्रा में खाया जाता है व तृप्ति भी नहीं होती है। इस प्रकार खाने से भोजन के शीतल, मात्रा से अधिक व विरस हो जाने के कारण पचने में कठिनाई होती है।

अत्युष्णभोजनाज्जिह्वाकण्ठौष्ठहृदयोदरम्।।२८।।
दह्यते न रसं वेत्ति रोगांश्चाप्नोति दारुणान्।
मुखाक्षिपाक-वैसर्प-रक्तपित्त-भ्रमज्वरान्।।२९।।

अत्युष्ण भोजन न करना- अति उष्ण भोजन करने से जिह्वा, कण्ठ, ओष्ठ, हृदय तथा उदर में जलन होती है, भोजन के रस की ठीक से अनुभूति नहीं होती। अति उष्ण भोजन से मुखपाक (मुंह का पकना), अक्षिपाक, विसर्प, रक्तपित्त, भ्रम तथा ज्वर आदि भयंकर रोग हो जाते हैं।

अतिशीताशिनः शूलं ग्रहणीमार्दवं घृणा।
कफवाताभिवृद्धिश्च कासो हिक्का च जायते।।३०।।

अतिशीतल भोजन न करना- अतिशीतल भोजन करने वाले व्यक्ति को शूल, ग्रहणी की मृदुता, घृणा, कफ व वात की वृद्धि, कास एवं हिक्का आदि रोग हो जाते हैं।

रूक्षं करोति विष्टम्भमुदावर्तं विवर्णताम्।
ग्लानिं बह्वशितं वायोः प्रकोपं मूत्रनिग्रहम्।।३१।।

रूक्ष भोजन न करना- रूक्ष भोजन से विष्टम्भ, उदावर्त, विवर्णता व ग्लानि होती है तथा मात्रा से अधिक खाया जाता है। रूक्ष भोजन से वायु का प्रकोप तथा जलीय अंश के अभाव में मूत्र का अवरोध हो जाता है।

अतिस्निग्धाशिनस्तन्द्रीतृष्णाजीर्णोदरामयाः।
भवन्ति कफमेदोत्था रोगाः कण्ठोद्भवास्तथा।।३२।।

अतिस्निग्ध भोजन न करना- अतिस्निग्ध भोजन करने वाले को तन्द्रा, तृष्णा, अजीर्ण, उदररोग हो जाते हैं तथा कफविकार, मेदोजन्य रोग एवं कण्ठरोग भी हो जाते हैं।

विष्टम्भोद्वेष्टनक्लेशचेष्टाहानिविसूचिकाः।
ज्ञेया विकारा जन्तूनामतिबह्वशनोद्भवाः।।३३।।

अतिभोजन न करना- अत्यधिक मात्रा में भोजन करने वाले व्यक्तियों को विष्टम्भ, उद्वेष्टन, क्लेश, चेष्टाहानि (निष्क्रियता) तथा विसूचिका (हैजा) आदि रोग हो जाते हैं।

अतिस्तोकाशिनोऽत्यग्निविकाराः कृशता भ्रमः।
अतृप्तिर्लघुता निद्राशकृन्मूत्रबलक्षयः।।३४।।

अत्यल्प भोजन न करना- बहुत अल्प भोजन करने वाले व्यक्ति को अत्यग्नि (भूख की अधिकता) से होने वाले विकार कृशता, भ्रम, अतृप्ति, लघुता (शरीर का छोटा व हल्का रहना) आदि होते हैं। इससे निद्रा, मल, मूत्र तथा बल का क्षय आदि दोष होते हैं।

अतिद्रवाशनाज्जन्तोरुत्क्लेशो बहुमूत्रता।
पार्श्वभेदः प्रतिश्यायो विड्भेदश्चोपजायते।।३५।।

अति तरल भोजन न करना- बहुत अधिक द्रव (तरल) भोजन करने से व्यक्ति को उत्क्लेश (जी मिचलाना), बहुमूत्र, पार्श्वभेद (बगल में पीड़ा), प्रतिश्याय (जुकाम), विड्भेद (मल का भेदन या पतलापन) हो जाता है।

अतिशुष्काशनं चापि विष्टभ्य परिपच्यते।
पूर्वजातरसं जग्ध्वा कुर्यान्मूत्रकफक्षयम्।।३६।।

अतिशुष्क भोजन न करना- अतिशुष्क भोजन जलीय अंश के अभाव में विष्टब्ध होकर पचता है। वह पहले उत्पन्न हुए रस को अपने में मिलाकर मूत्र व कफ का क्षय करता है। अत: अतिशुष्क भोजन नहीं करना चाहिए।

मोहात् प्रमादाल्लौत्याद्वा यो भुङ्क्ते ह्यप्रकाङ्क्षितः।
अविपाकारुचिच्छर्दिशूलानाहान् समृच्छति।।३७।।

भूख न होने पर भोजन न करना- जो मनुष्य भूख न होने या भोजन की रुचि न होने पर भी मूढता, प्रमाद अथवा जिह्वालौल्य (चटोरेपन) के कारण भोजन कर लेता है, उसे अविपाक (भोजन का न पचना), अरुचि, उल्टी, शूल तथा आनाह (पेट का तन जाना) आदि रोग हो जाते हैं।

प्रतान्तभोक्तुस्तृण्मूर्च्छा वह्निसादोऽङ्गसीदनम्।
ज्वरः क्षयोऽतिसारो वा मन्दत्वं दर्शनस्य च।।३८।।

प्रतान्त भोजन न करना- निरन्तर अर्थात् बार-बार प्रतान्त (बासी) भोजन करने वाले व्यक्ति को तृषा, मूर्छा, मन्दाग्नि, अंगपीडा, ज्वर, क्षय, अतिसार, दृष्टिमन्दता आदि रोग हो जाते हैं।

दौर्बल्यमदृढत्वं च भवत्येकरसाशनात्।
दोषाप्रवृद्धिर्धातूनां साम्यं वृद्धिर्बलायुषो:।।३९।।

आरोग्यं चाग्निदीप्तिश्च जन्तो: सर्वरसाशनात्।
तस्मादेकरसाभ्यासमारोग्यार्थी विवर्जयेत्।।४०।।

एकरस भोजन न करना- सदा एक ही रस वाला भोजन करने से दुर्बलता तथा अदृढत्व अर्थात् शरीर में शिथिलता हो जाती है। इसके विपरीत ऋतु अनुसार समुचित रूप से सब रसों वाला भोजन करने से दोषों की वृद्धि पर नियन्त्रण होता है, रस-रक्त आदि धातुओं की समता, बल व आयु की वृद्धि होती है तथा आरोग्यलाभ व जठराग्नि दीप्त होती है। इसलिए आरोग्य चाहने वाले व्यक्ति केवल एक रस के अभ्यास अर्थात् निरन्तर सेवन को त्याग दें।

कालसात्म्यादिनाऽनेन विधिनाऽश्नाति यो नर:।
स प्राप्नोति गुणांस्तज्जान्न च दोषै: प्रबाध्यते।।४१।।

पूर्वोक्त काल, सात्म्य आदि की विधि के अनुसार जो व्यक्ति भोजन करता है, वह उन-उनके गुणों को प्राप्त करता है तथा उसे उन-उन काल सात्म्य आदि से सम्बन्धित दोष कष्ट नहीं देते हैं।

स्थिरत्वं स्वस्थताऽङ्गानामिन्द्रियोपचयं बलम्।
कफमेदोऽभिवृद्धिं च कुर्यान्मधुरसात्म्यता।।४२।।

जिस व्यक्ति को मधुर रस की सात्म्यता अर्थात् अनुकूलता या सेवन का अभ्यास होता है, उसके शरीर में स्थिरता, अङ्गों की स्वस्थता, इन्द्रियों की पुष्टि होती है तथा बल, कफ एवं मेद की वृद्धि होती है।

दन्ताक्षिकेशदौर्बल्यं कफपित्तामयोद्भवम्।
लघुतामग्निदीप्तिं च जनयेदम्लसात्म्यता।।४३।।

अम्ल रस की सात्म्यता दाँत, नेत्र व केशों को दुर्बल करती है। कफ व पित्त के रोग पैदा करती है, शरीर में लघुता लाती है व जठराग्नि को प्रदीप्त करती है।

रक्तप्रकोपं तैमिर्यं तृष्णां दुर्बलशुक्रताम्।
पालित्यं बलहानिं च कुर्याल्लवणसात्म्यता।।४४।।

लवण रस की सात्म्यता रक्तप्रकोप (रक्तपित्त की अधिकता, खून में गर्मी का बढ़ना), तिमिर रोग, तृष्णा (अति प्यास) करती है। इससे शुक्र की दुर्बलता, पालित्य (केशों का श्वेतपन) व बल की हानि होती है।

पक्तेरुपचयं कार्श्यं रौक्ष्यं शुक्रबलक्षयम्।
पित्तानिलप्रवृद्धिं च कुर्यात् कटुकसात्म्यता।।४५।।

कटु (चरपरे) रस की सात्म्यता से पाचनशक्ति की वृद्धि होती है। इससे कृशता, रूक्षता, शुक्र व बल का क्षय तथा पित्त एवं वात की वृद्धि होती है।

क्लेदाल्पतां वातवृद्धिं दृष्टिहानिं कफक्षयम्।
त्वग्विकारोपशान्तिं च जनयेत्तिक्तसात्म्यता।।४६।।

तिक्त रस की सात्म्यता से शरीर में आर्द्रता की अल्पता हो जाती है। इससे वात की वृद्धि, नेत्रदृष्टि की क्षीणता व कफक्षय होता है एवं त्वचा के विकारों का शमन होता है।

कफपित्तक्षयं वायोः प्रकोपं पक्तिमार्दवम्।
कुर्याद्रक्तोपशान्तिं च कषायरससात्म्यता।।४७।।

कषाय रस की सात्म्यता से कफ व पित्त का क्षय, वात का प्रकोप, जठराग्नि की दुर्बलता व रक्तपित्त का शमन होता है।

ओजस्तेजो बलं वर्णमायुर्मेधा धृतिः स्मृतिः।
जायते सौकुमार्यं च घृतसात्म्यस्य देहिनः।।४८।।

जिसे घृत सात्म्य हो अर्थात् खाने में घी अभ्यस्त होता है, उस व्यक्ति का ओज, तेज, बल, वर्ण, आयु, मेधा, धृति, स्मृति व सौकुमार्य (सुकुमारता/कोमलता/कान्तियुक्तता) बढ़ता है।

तथैव क्षीरसात्म्यस्य परं चैतद्रसायनम्।
दृढोपचितगात्रश्च निर्मेदस्को जितश्रमः।।४९।।

इसी प्रकार क्षीरसात्म्य व्यक्ति को भी उपरोक्त गुण प्राप्त होते हैं। क्षीर (दूध) परम रसायन होता है। इसका सेवन करने वाला व्यक्ति दृढ़ व पुष्ट शरीर वाला, मोटापे से रहित व श्रम करने में समर्थ होता है।

बलवान् तैलसात्म्यः स्यात् क्षीणवातकफामयः।
चक्षुष्मान् बलवाञ्छ्लेष्मी दृढसत्त्वो दृढेन्द्रियः।।५०।।

दृढाश्रयो मन्दरुजो मांससात्म्यो भवेन्नरः।
अहितं यस्य सात्म्यं स्यादसात्म्यं च हितं भवेत्।।५१।।

तैलसात्म्य व्यक्ति के वातज व कफज रोग क्षीण हो जाते हैं। मांस अर्थात् गुद्देदार फल आदि भोज्यपदार्थ जिसे सात्म्य होते हैं, वह व्यक्ति नेत्रज्योतियुक्त, बलवान्, कफबहुल, दृढ़ मनःशक्ति व दृढ़ इन्द्रियों वाला होता है। मांससात्म्य व्यक्ति दृढ़ शरीर संस्थान वाले होते हैं व बुढ़ापे के प्रभाव से अधिक प्रभावित नहीं होते हैं।

स शनैर्हितमादद्यादहितं च शनैस्त्यजेत्।

हितकर पदार्थों को सात्म्य करने के लिए धीरे-धीरे उनका सेवन आरम्भ करना चाहिए तथा अहितकर पदार्थों का धीरे-धीरे परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार ये सात्म्य हो जाते हैं। किसी पदार्थ का निरन्तर व दीर्घकाल तक सेवन उसे सात्म्य बना देता है।

आदौ तु स्निग्धमधुरं विचित्रं मध्यतस्तथा।।५२।।
रूक्षद्रवावसानं च भुञ्जानो नावसीदति।

भोजन के आरम्भ में स्निग्ध व मधुर पदार्थ लेने चाहिए। मध्य में विचित्र अर्थात् नाना स्वाद वाले पदार्थ लेने चाहिए। भोजन के अन्त में रूक्ष व द्रव पेय पदार्थ लेने चाहिए। इस क्रम से भोजन करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है तथा रोगजन्य कष्ट नहीं पाता है।

भागद्वयमिहान्नस्य तृतीयमुदकस्य च।।५३।।
वायोः सञ्चरणार्थं च चतुर्थमवशेषयेत्।

उदर (पेट) के दो भाग अन्न से भरे, तीसरा भाग जल से भरे तथा चौथा भाग वायु के संचारण हेतु खाली रखना चाहिए।

ततो मुहूर्तमाश्वस्य गत्वा पादशतं शनैः।।५४।।
स्वासीनस्य सुखेनान्नमव्यथं परिपच्यते।

तदनन्तर मुहूर्तभर विश्राम करके सौ कदम धीरे-धीरे चलकर सुखपूर्वक बैठकर अपना दैनिक कर्म करे। इस प्रकार करने से बिना कष्ट के सुखपूर्वक अन्न पच जाता है।

वीणावेणुस्वनोन्मिश्रं गीतं नाट्यविडम्बितम्।।५५।।
विचित्राश्च कथाः श‍ृण्वन् भुक्त्वा वर्धयते बलम्।

भोजन के उपरान्त वीणा, वेणु (बांसुरी) के स्वर से मिश्रित अभिनयपूर्ण गीत सुनने चाहिए। इसी प्रकार विचित्र मनोरंजक कथाओं का श्रवण करना चाहिए। इस प्रकार करने से मन की प्रसन्नता व बल बढ़ता है।

सुखस्पर्शविहारं च सम्यगाप्नोत्यतोऽन्यथा।।५६।।

इस रीति से सुखपूर्ण व स्वास्थ्यवर्द्धक विहार सम्पन्न होता है, अन्यथा नहीं।

अतिस्निग्धातिशुष्काणां गुरूणां चातिसेवनात्।
जन्तोरत्यम्बुपानाच्च वातविण्मूत्रधारणात्।।५७।।

रात्रौ जागरणात् स्वप्नाद्दिवा विषमभोजनात्।
असात्म्यसेवनाच्चैव न सम्यक् परिपच्यते।।५८।।

अतिस्निग्ध व अतिशुष्क पदार्थों का सेवन करने से, गुरु पदार्थों के अति सेवन से, अधिक जल पीने से तथा मल-मूत्र आदि का वेग रोकने से अन्न का पाचन अच्छी प्रकार से नहीं होता है। इसी प्रकार रात में जागने, दिन में सोने, विषम भोजन करने तथा असात्म्य पदार्थों के सेवन से अन्न का पाचन अच्छी प्रकार से नहीं होता है।

हिताहितं यदैकध्यं भुक्तं समशनं तु तत्।
पूर्वभक्तेऽपरिणते विद्यादध्यशनं भिषक्।।५९।।

हितकर और अहितकर पदार्थों को एकसाथ मिलाकर खाना समशन कहलाता है। पहले खाए भोजन के न पचने की स्थिति में ऊपर से पुन: भोजन कर लेना अध्यशन कहलाता है।

क्षुत्तृष्णोपरमे जाते शान्तेऽग्नौ प्रमृताशनम्।
विषमं गुणसंस्कारात् क्रमसात्म्यव्यतिक्रमात्।।६०।।

भूख-प्यास के उपरत हो जाने पर व जठराग्नि के शान्त हो जाने पर अर्थात् भूख मर जाने पर भोजन करना प्रमृताशन कहलाता है। गुण, संस्कार, क्रम व सात्म्य के उल्लंघन से भोजन करना विषमाशन कहलाता है। ये चारों- अर्थात् समशन, अध्यशन, प्रमृताशन व विषमाशन स्वास्थ्य के लिए घातक होते हैं, अत: त्याज्य हैं।

विरुद्धं पयसा मत्स्या यथा वा गुडमूलकम्।
स्यादजीर्णाशनं नाम व्युष्टाजीर्णे चतुर्विधे।।६१।।
तथैवात्यशनं ज्ञेयमतिमात्रोपयोगत:।
स(मे)तान्यामयोत्पत्तौ मूलहेतुं प्रचक्षते।।६२।।

‘विरुद्धाशन’ वह कहलाता है, जिसमें विरोधी पदार्थों का एक साथ

सेवन किया जाता है। जैसे- दूध के साथ मछली, गुड एवं मूली खाना परस्पर विरुद्ध है। चार प्रकार का व्युष्टाजीर्ण (प्रभात काल में हुआ अजीर्ण) 'अजीर्णाशन' कहलाता है। इसी प्रकार अधिक भोजन करना 'अत्यशन' कहलाता है। ये सभी 'विरुद्धाशन' आदि व पूर्वोक्त 'समशन' आदि रोगों की उत्पत्ति के मूल कारण माने जाते हैं।

आहारसात्म्यं देशेषु येषु येषु यथा यथा।
प्रोक्तं तथोपदेष्टव्यं तेषु तेषु तथा तथा।।६३।।

जिन-जिन देशों में जो-जो आहार सात्म्य माना गया है, उन-उन देशों में उसी-उसी आहार का उसी प्रकार उपदेश करना चाहिए।

चतुर्विंशतिरित्येते विकल्पाः समुदाहृताः।
भिषजा ह्युपदेष्टव्या राज्ञो राजोपमस्य वा।।६४।।
अन्येषां वा वसुमतां यशोधर्मार्थसिद्धये।

ये आहार के २४ विकल्प अर्थात् विशिष्ट विधान कहे गए हैं। वैद्य को राजा तथा राजा के समान अन्य ऐश्वर्यशाली व सत्पात्र जिज्ञासु व्यक्तियों के लिए इनका उपदेश करना चाहिए। इससे यश, धर्म व अर्थ की सिद्धि होती है।

इति ह स्माह भगवान् कश्यपः।।६५।।

ऐसा भगवान् (विमल ज्ञान से सम्पन्न) महर्षि कश्यप ने कहा था।

ओम्

श्रीकाशिनाथ-विरचिता

अजीर्णामृतमञ्जरी

(अज्ञातकर्तृका अस्मत्प्रतिसंस्कृता च टीका)

(मङ्गलाचरणम्)

यो रावणं रणमुखे भुवनैकभारं
हत्वा चकार जगतः परमोपकारम्।
यं ब्रह्म चाभिदधिरे परतोऽपि पारं
तं नौमि मैथिलसुताहृदयैकहारम्।।१।।

(टीकाकर्तुर्मङ्गलाचरणम्)

प्रणम्य नन्दनन्दनं गजाननं च भारतीम्।
अजीर्णनाशकारिका विकाश्यते हि मञ्जरी।।

सकलमनुजोपकाराय ग्रन्थकारः श्रीकाशिनाथः स्वप्रणीतग्रन्थैरायुर्वेदं बहुधोपदिश्य समस्तरोगहेतुभूतस्य अजीर्णस्यानुत्पत्तये तत्तद्द्रव्योद्भवाजीर्ण-नाशनं द्रव्यमुपदिशन्निमामजीर्णामृतमञ्जरीं चिकीर्षुर्विघ्नविनाशाय स्वेष्ट-देवतानतिरूपं मङ्गलं चकार।

यो रावणेत्यादि। अहं श्रीकाशिनाथः, तं प्रसिद्धं मैथिलसुताहृदयैकहारं नौमि नमस्करोमि। मैथिलो जनकराजस्तस्य सुता कन्या, तस्याः हृदयस्योरः-स्थलस्यैकं मुख्यं हारं भूषणम्, भूषणबाहुल्येऽपि यं विना नातिशोभते इति एकशब्दस्यार्थः। अथवा हारं ग्राहकं तम्, कम्? यः जगतो लोकस्य परम उत्कृष्टश्चासौ उपकारस्तं हितं चकार। किं कृत्वा? रावणाभिधानं राक्षसं रणमुखे संग्रामे हत्वा, न तु छलेन। किम्भूतं रावणम्? भुवनैकभारं भुवनानां त्रयाणां लोकानाम् एकं मुख्यं भारमिव भारं पीडाकारकत्वाच्च। पुनर्मुनयो

वसिष्ठादयः यं ब्रह्म सर्वव्यापकमभिदधिरे कथितवन्तः। पुनः किम्भूतः ? परतो ब्रह्मादेरपि पारं परतरम्, एतेन शुद्धसत्त्वात्मकम् इत्यर्थः। एतेन ब्रह्महननाद् दोषोऽप्यस्य नास्तीति सूचयति। अन्यस्य ब्रह्मघ्नस्य स्मरणम-मङ्गलम्, अस्य तु स्मरणमेवान्येषामपि महापातकनाशकत्वेन मङ्गलम्।

जिसने संग्राम भूमि में भुवन (संसार) के बड़े विकट भारभूत राक्षसराज रावण को मारकर जगत् का परम उपकार किया, जिसे ज्ञानियों ने त्रिगुणातीत परात्पर ब्रह्म के रूप में निरूपित किया है, उस जनकनन्दिनी सीता के हृदय के एकमात्र हार बने भगवान् राम को मैं (ग्रन्थकार काशिनाथ द्विवेदी) ग्रन्थारम्भ में श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ।

नालीकेरफलेऽथ तण्डुलजलं क्षीरं रसाले हितं
जम्बीरोत्थरसो घृते समुचितस्सर्पिस्तु मोचाफले।
गोधूमेषु च कर्कटी हिततमा मांसात्यये काञ्जिकं
नारङ्गे गुडभक्षणं च विहितं पिण्डालुके कोद्रवः।।२।।

नालीकेरफलेष्वित्यादि। नालीकेरस्त्र्यक्षफलं, नालीकेरो नालकेरः नालिकेलः, रलयोः सावर्ण्यात् नालिकेलः नालकेलः नारीकेलः नारिकेलः इति शब्दषट्कमस्य। तदुद्भवेऽजीर्णे तण्डुलजलं पाचनमित्यर्थः। तल्लक्षणम्-

कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत्।
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु।। इति।

(शार्ङ्गधरसंहिता, मध्यमखण्डः- १.२८)

रसाले आम्रफले क्षीरं गव्यं पयः, घृते सर्पिर्षि जम्भीरोत्थरसः निम्बु-स्वरसः समुचितो योग्यः सुखकारकत्वात्। सर्पिः गव्यघृतं मोचाफले कदली-फले समुचितम्। अर्थवशाल्लिंगपरिणामः गोधूमेषु सुमनोनामधान्येषु कर्कटी त्रपुसफलं हितं हिततमा इत्यर्थः। मांसादने मांसभक्षणोत्थे अजीर्णे धान्याम्लं काञ्जिकं हितम्। नारङ्गे नागरङ्गाख्ये अम्लफले गुडस्येक्षुरसोद्भवस्य भक्षणं कथितम्। पिण्डालुके (आलुक)भेदे कोद्रवः कोरदूषको धान्यविशेषः हितः।

नारियल से हुए अजीर्ण में तण्डुलजल (चावल का पानी) व आम्रफल के अजीर्ण में दूध हितकारी होता है। घृत से हुए अजीर्ण में जम्बीर का रस उचित होता है, केले से हुए अजीर्ण में घी उपयोगी होता है। गेहूं के अजीर्ण में ककड़ी, मांसजन्य अजीर्ण में कांजी लाभकारी होती है, नारंगी के अजीर्ण में गुड़भक्षण उचित होता है तथा पिण्डालु (अरुई, घुइयाँ) के अजीर्ण में कोद्रव (कोदो) का सेवन हितकर होता है।

पिष्टान्ने सलिलं प्रियालफलजे पथ्या हिता माषजे
खण्डं क्षीरभवे च तक्रमुचितं कोष्णाम्बु कोलाम्रजे।
मात्स्ये चूतफलं त्वजीर्णशमनं मध्वम्बु पानात्यये
तैलं पुष्करजे कटु प्रशमनं शेषं तु बुद्ध्या जयेत्।।३।।

कोलाम्रजे-जै., कालाम्रजे-ला.१। पुष्करजे-ला.१, पौष्करजे-जै.।

पिष्टान्न इत्यादि। पिष्टान्ने पिष्टान्नकृते रोटिकादौ अजीर्णे सलिलं पानीयं हितम्, शीतलजलपानेन पिष्टान्नपरिपाक इति। प्रियालफलजे प्रियालफलेभ्यः चारोलीफलेभ्यो जाते अजीर्णे पथ्या हरीतकी हिता। माषः शिम्बिधान्यम्, तदुद्भवे अजीर्णे खण्डं शर्कराभेदः हितम्। क्षीरं गव्यं पयः, तदुद्भवे अजीर्णे तु तक्रमुदश्विद् उचितम्, अविशेषात् तक्रमपि गव्यमेव। कालाम्रम् आम्रभेदः, तदुद्भवे अजीर्णे उष्णाम्बु तप्तोदकमुचितं योग्यम्, तस्यातीव गुरुत्वाद् इत्यर्थः। 'कोलाम्रजे' इति पाठे तु कोलं बदरं आम्रं च कोलाम्रम्। तदुद्भवे अजीर्णे कोष्णाम्बु हितम् इति संगतिः।

मत्स्या जलचरास्तद्भक्षणोद्भवे अजीर्णे चूतफलम् आम्रफलम् अजीर्णशमनं तन्नाशकम्, शमनवचनाद् आमापक्वयोः कथनम्। पानात्यये मद्यपानोद्भवे अजीर्णे मध्वम्बु माक्षिकसहितं जलम्, पौष्करं पुष्करमूलम्, तदुद्भवे अजीर्णे कटु तैलं सर्षपतैलम् अजीर्णनाशनम्। शेषांस्तु अजीर्णान् बुद्ध्या मत्यनुसारेण भेषजकल्पनेन जयेत्।

आटे से बने भोज्य पदार्थों के अजीर्ण में जल पीना हितकारी होता है, प्रियाल फल (चिरौंजी) से हुए अजीर्ण में हरड़ हितकारी होती है। उड़द से हुए अजीर्ण में खाँड हितकारी होती है, दूध से हुए अजीर्ण में तक्र उचित होता है, कोल (बेर) व आम्र फल से हुए अजीर्ण में गर्म पानी पीना हितकर होता है। मछलियां खाने से हुए अजीर्ण में आम्र फल अजीर्ण का शमन कर देता है। अधिक मदिरा पीने पर शहद मिला पानी उसके दोष का शमन करता है, पुष्करमूल (कमलगट्टे) के अजीर्ण में कड़वा तेल (सरसों का तेल) उपयोगी होता है। इसी प्रकार शेष अजीर्ण को भी बुद्धिपूर्वक दूर करना चाहिए।

तथा– **पनसे कदलं कदले च घृतं**
घृतपाकविधावपि जम्भरसः।
तदुपद्रवशान्तिकरं लवणं
लवणेऽपि च तण्डुलवारि परम्।।४।।

पनस इत्यादि। पनसः कण्टकिफलम्, तदुद्भवे अजीर्णे कदलं कदलीफलम्, कदले च कदलीफलोद्भवे अजीर्णे घृतं हितम्। ननु मोचाग्रहणेनैव कदलीग्रहणे सिद्धे पुनः कदलीग्रहणं किमिति शृणु- कदल्या भेदद्वये सिद्धे मोचाशब्देन ह्रस्वा कदली, कदलशब्देन महत्कदलीफलं गृह्यते। एवमेव घृतग्रहणे पूर्वपद्येन कृते सति पुनर्घृतग्रहणं माहिषपरम्, पूर्वोदितं गव्यपरम्। सर्पिःशब्दसाहचर्यात् माहिषघृतपाकविधानविषयेऽपि जम्भरसं जम्भीररसम् 'अपि'शब्दः साकांक्षत्वेन सङ्केतयति। जम्भरसः गोघृतं पाचयत्येव, परन्तु माहिषमपि पाचयतीत्यर्थः।

लवणं सैन्धवम्, तदुपद्रवशान्तिकरं जम्बीररसोद्भवाजीर्णनाशकमित्यर्थः। लवणेषु सैन्धवादिषु सर्वलवणभेदोद्भवाजीर्णे च तण्डुलवारि तण्डुलोदकं परम् अत्यर्थं सुखकारि। अन्यान्यपि लवणपाचनानि सन्ति, परन्तु यथा तण्डुलजलं तथा न तानीति परशब्दार्थः।

पनस (कटहल) के अजीर्ण में केला, केले के अजीर्ण में घी, घी के अजीर्ण में जम्भरस (जम्बीरी निम्बू का रस) उपयोगी होता है। जम्बीरी के रस से हुए उपद्रव को लवण शान्त कर देता है, लवण की अधिकता से हुए उपद्रव के शमन में तण्डुलजल (तण्डुलोदक) परम उपयोगी होता है।

★ *कुटे हुए चावलों को आठ गुणा पानी में डाल कर कुछ समय पश्चात् पानी निकाल लें, यही तण्डुलजल कहलाता है।*

नारिकेलफलतालबीजयो:
पाचनं य इह तण्डुलं विदु:।
ते वदन्ति मुनयोऽथ तण्डुलान्
क्षीरवारि परिपाचयेदिति।।५।।

क्षारवारि-ला.१, क्षारिवारि-जै., क्षीरवारि-...

नारिकेलफलेत्यादि। इह आयुर्वेदशास्त्रे मुनय: आचार्या: तण्डुलजलं नारिकेलफलतालबीजयो: पाचनं विदु: कथितवन्त:। अथानन्तरमेते मुनय: इति वदन्ति, इतीति किम्? क्षीरवारि गोक्षीरयुक्तं वारि तण्डुलानपि पाचयति।

नारियल व तालबीज (तालफल का बीज अर्थात् गिरी) को पचाने के लिए जिन मुनियों ने तण्डुल (चावल) को उपयोगी बताया है, वे ही मुनिजन बताते हैं कि तण्डुल (चावल) को पचाने के लिए क्षीरवारि (जलमिश्रित गोक्षीर) पीना उपयोगी होता है।

★ *पद्य के अन्तिम चरण में 'क्षीरवारि' के स्थान पर 'क्षारवारि' पाठ भी मिलता है, परन्तु भावमिश्र की गुणमाला के अजीर्णशमनवर्ग, श्लोक-५ में 'तण्डुलेषु पयस: पयो हितम्' पाठ मिलता है। इससे 'क्षीरवारि' पाठ का ही समर्थन होता है। अत: यही मूलपाठ के रूप में स्वीकार किया गया है।*

दाडिमामलकताललतिन्दुकी-
बीजपूर-लवलीफलानि च।
बाकुलेन च फलेन पाचयेत्

पाकमेति बकुलं स्वमूलतः ।।६ ।।

दाडिमेत्यादि। बकुलो मद्यगन्धः, तस्येदं बाकुलं फलम्, एतानि अतीव अत्यर्थं निरवशेषतया पाचयति। एतानि कानि? दाडिमं शुकप्रियम्, आमलकं धात्रीफलम्, तालस्तृणराजाह्वयो दीर्घपत्रो महावृक्षः, तिन्दुकीति तिन्तिणी स्पन्दनाख्या लताभेदः। एतेषां फलानि। बकुलं स्वमूलतः स्वजटारसस्य पानात् पाकमेति।

अनार, आंवला, तिन्दुकी (तेन्दु), बीजपूर (बिजौरा निम्बू) व लवली फल (हरफारवेड़ी), इनको बकुल (मौलसिरी) का फल पचा देता है; और बकुल का फल बकुल के ही मूल से अर्थात् उसकी जटा का स्वरस पीने से पच जाता है।

मधूक-मालूर-नृपादनानां
परूष-खर्जूर-कपित्थकानाम्।
पाकाय पेयं पिचुमन्दबीजं
सिद्धार्थको हन्ति च बीजपूरम्।।७।।

मधूकेत्यादि। पिचुमन्दो निम्बस्तस्य बीजं फलम् एतेषां पाकाय पेयम्, केषाम्? मधूको गुडपुष्पः, मालूरं बिल्वं, नृपादनं राजादनं, परूषको मृदुफलः, खर्जूरः श्रेणी, कपित्थो दधिफलः, तदेव पिचुमन्दबीजं घृते आज्ये उदश्विति च पेयम्, तदुद्भवे अजीर्णे इत्यर्थः।

इह घृताजीर्णे जम्भरसे उक्तेऽपि भेषजान्तरकथने न पुनरुक्तदोषः, अपिशब्दात् चेदं बोधयति अन्यदपि घृततक्रयोः पाचनं निम्बबीजमित्यर्थः।

मधूक (महुआ), मालूर (बिल्व, बेलफल), नृपादन (खिरनी), परूष (फालसा), खजूर व कपित्थ (कैंथ) को पचाने के लिए नीम के बीज का चूर्ण पानी में मिलाकर पीना चाहिए। बीजपूर (बिजौरा निम्बू) के अजीर्ण को सिद्धार्थक (श्वेत सरसों) का सेवन नष्ट कर देता है। थोड़े लवण के साथ पीसकर सरसों का सेवन उक्त अजीर्ण के शमन के लिए किया जाता है।

मृणाल-खर्जूरक-हारहूरा-
कसेरु-शृङ्गाटक-शर्कराणाम्।
यथा विपाकाय च भद्रमुस्तं
तथा रसोने च पयः प्रशस्तम्।।८।।

मृणालेत्यादि। भद्रमुस्तं यथा एतेषां विपाकाय प्रशस्तं हितं तथा रसोनेषु उग्रगन्धेषु पयः गोक्षीरं प्रशस्तम्। केषाम्? मृणालं विसम्, खर्जूरकः पिण्डखर्जूरकः, **'अल्पे'** (अष्टा०-५.४.८५) इति सूत्राद् अल्पत्वे कन्प्रत्यय-विधानात्। हारहूरा द्राक्षा, कसेरुकं स्वल्पकन्दं जलोद्भवम्, शृंगाटकः जलकन्दाख्यस्त्रिकोणफलः, शर्करा सिता, तेषां विपाकाय यथा भद्रमुस्ता हिता तथा रसोनस्य लशुनस्य विपाकाय पयः गोक्षीरं प्रशस्तम्।

मृणाल (कमलनाल), खजूर, हारहूरा (मुनक्का), कसेरु, सिंघाड़ा व शक्कर, इनको पचाने के लिए भद्रमुस्त (नागरमोथा) उपयोगी होता है तथा लशुन के अजीर्ण को दूर करने के लिए उबालकर शीतल किया हुआ दूध उत्तम होता है।

आम्रातकोदुम्बरपिप्पलानां
फलानि च प्लक्षवटादिकानाम्।
स्युः शर्मणे पर्युषितोदकेन
सौवर्चलेनाम्रफलस्य पाकः।।९।।

आम्रातकेत्यादि। एतेषां फलानि पर्युषितोदकेन पूर्वदिनोषितेन जलेन पीतेन शर्मणे सुखाय स्युः, कर्म कर्तुमित्यर्थः। केषाम्? आम्रातकः आम्रवटः, उदुम्बरो जन्तुफलः, पिप्पलश्चलदलः तथा प्लक्षः जटी, वटः न्यग्रोधः, आदिशब्दाद् काकोदुम्बरकादीनां ग्रहणम्। प्रियालमज्जा राजादनफलमज्जा कदुष्णकेन ईषदुष्णेन जलेन पीतेन शर्मणे शर्म कर्तुं स्यादित्यर्थः।

आम्रातक (आमड़ा), उदुम्बर (गूलर), पीपल, प्लक्ष (पिलखन) व बड़, इनके फलों का अजीर्ण पर्युषित (बासी) शीतल पानी पीने से दूर हो

जाता है। आम के फल का अजीर्ण सौवर्चल (संचर नमक) से नष्ट हो जाता है।

सौवीरं फलमुष्णवारि हन्यात्
प्राचीनामलकं च राजिकैका।
खर्जूरं सपरूषकं प्रियालं
क्षीरी तालफलं पचेन्मरीचम् ।।१०।।

सौवीरं बदरम्, तज्जन्यमजीर्णमुष्णवारि क्वथितं जलं हन्यात् नाशयेत्। एका राजिका आसुरी प्राचीनामलकं तत्कृतमजीर्णं हन्यात् निवारयेत्। क्षीरी राजादनं पचेत् जरयेत्। किम्? सपरूषकं परूषक फलसहितं प्रियालं प्रियालफलम्। मरीचं च तालफलं पचेत् जरयेत्।

सौवीर (बेर) फल के अजीर्ण को उष्ण जल दूर कर देता है। प्राचीनामलक (पानी आँवला) के अजीर्ण को अकेली राजिका (राई) दूर कर देती है। क्षीरी (राजादन/खिरनी) नामक फल खजूर, फालसा व चिरौंजी को पचा देता है। काली मिर्च तालफल को पचा देती है।

नागरं हरति बिल्वजाम्बवं
शर्करा पचति तिन्दुकीफलम्।
जीरकं जरयतीह बाकुलं
पाचयेन्मधुरिका कपित्थजम्।।११।।

बिल्वं च जाम्बवं च बिल्वजाम्बवम्, एतज्जन्यमजीर्णं हरति, किम्? नागरं विश्वभेषजमित्यर्थः। शर्करा सिता तिन्दुकीफलं पचति जरयति। जीरकं जरयति, किम्? बाकुलं बकुलफलम्। मधुरिका शतपुष्पा कपित्थजं कपित्थ-फलोद्भवमजीर्णं पाचयेत्।

बेल (बिल्वफल) व जामुन के फल से हुए अजीर्ण को नागर (सौंठ) दूर कर देती है। तिन्दुकी (तेन्दु) के फल को शर्करा पचा देती है।

बाकुल (मौलसिरी के फल से हुए) अजीर्ण को जीरा दूर कर देता है तथा कपित्थ (कैंथ) फल को मधुरिका (सौंफ) पचा देती है।

पनसकामलकीफलपक्तये
भजत सर्जतरोरपि बीजकम्।
सकलमप्युदितानुदितं फलं
प्रपचति प्रसृतं कटुतिन्दुकम्।।१२।।

पनसकं कण्टकिफलम् आमलकीफलं धात्रीफलम्, तयोः पक्तये जरणाय सर्जतरोः सालवृक्षस्य बीजकं भजत सेवध्वम्। कटुतिन्दुकं प्रपचति प्रकर्षेण जरयति, किम्? सकलमपि फलम्, कीदृशम्? इह उदितम् अनुदितं वा सकलमेव प्रपचतीत्यर्थः।

कटहल व आंवले को पचाने के लिए सर्जतरु (शाल वृक्ष) के बीज का उपयोग करना चाहिए। अब तक कहे या न कहे सभी फलों को कटु-तिन्दुक (कड़वा तेन्दु/कुचेलक) पचा देता है।

आर्द्राम्रबीजं पनसस्य पक्त्यै
रसालपक्त्यै घनरावमूलम्।
अपूपपक्त्यै सजला यवानी
सा कैश्चिदुक्ता पृथुकस्य पक्त्यै।।१३।।

घनरावस्तण्डुलीयकः।

पनसस्य पक्त्यै पाचनाय आर्द्राम्रबीजम् उक्तं विहितम्। रसालस्य आम्रफलस्य पक्त्यै पाकाय घनरावमूलं तण्डुलीयमूलम् उक्तम्। अपूपानां जरणाय जलसहिता यवानी उक्ता विहिता। सैव च यवानी पृथुकस्य चिपिटस्य पक्त्यै पाकाय कश्चिद् उक्ता कथिता।

कटहल को पचाने के लिए आम की बिना सुखी गुठली उपयोगी होती है। आम के फल को पचाने के लिए घनराव (तण्डुलीय, चौंलाई) का मूल उपयोगी होता है। इसी प्रकार अपूप (पूआ) को पचाने के लिए जल में

मिलाई अजवाइन कारगर होती है। कुछ विद्वान् पृथुक (पोहा) का अजीर्ण दूर करने के लिए भी जलमिश्रित अजवाइन को ही उपयोगी बताते हैं।

पालङ्क्किाकेमुककारवल्ली-
वार्ताकवंशाङ्कुरमूलकानाम्।
उपोदिकालाबु-पटोलकानां
सिद्धार्थको मेघरवस्य पक्ता।।१४।।

पालङ्क्किेत्यादि। सिद्धार्थकः सर्षपः शाकभेदः एतेषां पक्त्यै परिपाकाय भवति। केषाम्? पालङ्क्किा पालक्या शाकभेदः, केचुकं छत्राकं, कारवल्ली कठिल्लकः, वार्ताकं वृन्ताकफलं, वंशाकुरः वंशोद्भवः शाकविशेषः, मूलकं शाकभेदः, उपोदिका पोतिकी शाकभेदः, अलाबुः तुम्बी वृत्तफलाख्यः[१] सर्पाकारः तथा मेघरवस्य तण्डुलीयकस्य पक्त्यै सर्षपः प्रभवति इत्यध्याहारः।

पालंकिका (पालक), केमुक/केउँआ/कन्दविशेष (COSTUS) , कारवल्ली (करेला), वार्ताक (बैंगन), वंशांकुर (बांस के अंकुर), मूली, उपोदिका (पोई), अलाबु (घीया), पटोल (परवल) व मेघरव (चौलाई), इन सबको सिद्धार्थक (श्वेत सरसों) पचा देती है। श्वेत सरसों को पीस कर थोड़े लवण के साथ सेवन करने से इनका पाचन होता है।

पटोलवंशाङ्कुरकारवल्ली-
फलान्यलाबूनि बहूनि जग्ध्वा।
क्षारोदकं ब्रह्मतरोर्निपीय
भोक्तुं पुनर्वाञ्छति तावदेव।।१५।।

पटोलेत्यादि। नरः पुनस्तावदेव तत्परिमाणं पुनर्भोक्तुं वाञ्छतीत्यर्थः। किं कृत्वा? एतानि बहूनि जग्ध्वा, पुनः किं कृत्वा? ब्रह्मतरोः पलाशस्य क्षारोदकं निपीय पीत्वा। एतानि कानि? पटोलस्तिक्तकः, वंशांकुरो वंशप्ररोहः, कारवल्ली फलं कठिल्लकः, अलाबुः तुम्बी।

परवल, वंशांकुर (बांस की कोंपल), कारवल्ली (करेला) व घीया के शाक को अधिक मात्रा में खाकर भी यदि कोई ब्रह्मतरु (पलाश/ढाक वृक्ष) के क्षार से मिश्रित जल को पी ले, तो पुनः उतना ही खाने की इच्छा हो जाती है।

वास्तूकसिद्धार्थकचुञ्चुशाकं
प्रयाति सद्यः खदिरेण पाकम्।
यथा गुडः सूरणनागरङ्गौ
तथालुकं तण्डुलवारि हन्ति।।१६।।

वास्तूकं यवशाकं सिद्धार्थकः श्वेतसर्षपः चुञ्चुशाकं ...... सद्यः सत्वरमेव खदिरेण पाकं प्रयाति जीर्यते। यथा गुडः सूरणनागरङ्गौ सूरणकन्दं नारंगफलं च हन्ति जरयति तथा तण्डुलवारि आलुकं एतन्नामकं कन्दशाकं जरयति।

बथुआ, सिद्धार्थक (श्वेत सरसों) व चुंचु (चेवुना) का शाक खदिर के क्वाथ से शीघ्र ही पच जाता है। जैसे गुड सूरण (जिमिकन्द) व नागरङ्ग (नारंगी/सन्तरा) को पचा देता है, उसी प्रकार तण्डुलजल (तण्डुलोदक) आलू को पचा देता है।

★ यह श्लोक दत्तराम-संस्करण व उसकी आधारभूत प्रतिलिपियों में भिन्न रूप में मिलता है-

चुञ्चूक-सिद्धार्थक-वास्तुकानां गायत्रिसारक्वथितेन पाकः।
शाकानि सर्वाण्युपयान्ति पाकं क्षारेण सद्यस्तिलनालजेन।।४४।।

चूका, सरसों, बथुआ इनके खाने से हुआ अजीर्ण खदिरसार के काढ़े से दूर हो जाता है। सभी शाकों का अजीर्ण तिलनाल के क्षार से नष्ट हो जाता है।

पत्राणि पुष्पाणि फलानि यानि
मूलानि पूर्वं न मयोदितानि।

शाकानि सर्वाण्युपयान्ति पाकं
क्षारेण तान्येव तिलोद्भवेन।।१७।।

इतः पूर्वं यानि पत्राणि पुष्पाणि फलानि मूलानि वा मया न प्रोक्तानि, तानि सर्वाण्यपि पाकमुपयान्ति जीर्यन्ते, केन? तिलोद्भवेन तिलनालजन्येन क्षारेण।

पत्र, पुष्प, फल, मूल आदि के जो भी शाक हैं, जिनके पाचन के विषय में पहले नहीं कहा, वे सभी तिलक्षार (तिलों से बने क्षार) द्वारा पच जाते हैं।

पिशितपनसयोः स्यादाम्रबीजेन पाकः
कृशरमहिषयोषित्क्षीरयोः सैन्धवेन।
चिपिटपरिणतिः स्यात् पिप्पलीदीप्यकाभ्या-
मपहरति तुषाम्भो द्वैदलानामजीर्णम्।।१८।।

ला.१ में उपलब्ध, जै. में अनुपलब्ध।

पिशितेत्यादि। आम्रस्य रसालस्य बीजम् अस्थि, तेन पिशितपनसयोः पाकः स्यात्। कृशरो माषतिलतण्डुलादिसाधितो भक्षविशेषः, उक्तञ्च-'**क्वचित् समाषैः क्वाप्येवं कृशरा तिलतण्डुलैरि**'ति। महिषयोषित्क्षीरं माहिषं पयः, तयोः सैन्धवेन पाको भवति। पिप्पली कणा, दीप्यकं यवानी, आभ्यां चिपिटस्य पृथुकस्य परिणतिः पाकः स्यात्। तुषाम्बु काञ्जिकम्, द्वे दले येषां तानि मुद्गादीनि शिम्बिधान्यानि, तेषाम् अजीर्णमपहरति नाशयतीत्यर्थः।

पिशित (मांस) और पनस (कटहल) का पाचन आम की गुठली से हो जाता है। खिचड़ी व भैंस के दूध का पाचन सैन्धव लवण से हो जाता है। चिपिट (चिवड़ा) का पाचन पिप्पली व दीप्यक (चित्रक/अजवायन) से हो जाता है। तुषाम्बु (धान्याम्ल) दाल के अजीर्ण को दूर कर देता है।

काञ्जिकं हि लवणान्वितं शृतं

पिष्टपाचनकमादिशन्ति हि।
सर्पिरेव यवशूकसम्भवं
मांसपाचनमथोष्णवारिणा ।।१९।।

यवशुक्तसंयुतं-.., यवशूकसम्भवं-जै.ला.।

काञ्जिकम् आरनालम्, तद्बिलवणान्वितं सैन्धवेन लवणेन संयुतं शृतं क्वथितं च पिष्टपाचनकं पिष्टान्न कृतानां रोटिकादीनां भोज्यानां पाचनम् आदिशन्ति निर्दिशन्ति मुनयः इति शेषः। यवशूकसम्भवं तुषाम्लं सर्पिः घृतं पाचयति एव नूनमिति भावः। एवकारोऽत्र अवधारणार्थः। उष्णवारिणा तप्तोदकेन मांसपाचनं पिशितस्य जरणं भवति।

पिष्टान्न (आटे) से बने भोज्य पदार्थों (रोटी, पूरी आदि) को लवण मिलाकर उबाली हुई कांजी पचा देती है। यवशूकसम्भव (तुषाम्ल/जौ से बनी काञ्जी) घी को पचा देती है। उष्ण जल से मांस का पाचन होता है।

श्यामाकनीवारतिलातसीनां
निष्पावकङ्गूयवषष्टिकानाम्।
मन्थेन पाकोऽथ कुलत्थचिञ्चा-
पाकाय पेयं तिलतैलमेकम्।।२०।।

श्यामाकेति। मन्थः बहुजलं मथितं दधि। तदुक्तम्-

[1]सरसं निर्जलं घोलं मथितं सारवर्जितम्।
समोदकं भवेत्तक्रमर्धाम्भोऽन्ये बभाषिरे।
हृतसारं जलप्रायं मथितं मन्थकः स्मृतः।। इति।
(म.नि.-८.११२)

१. *'**ससारं**' इति स्यात्।*

तेन पाकः। केषाम्? श्यामाकस्तृणधान्यम्, नीवारः अकृष्टपच्यं जलधान्यम्, कुलत्थश्चक्रकः, षष्टिः षष्टिदिवसोद्भवो धान्यविशेषः '**षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते**' (अष्टा०-५.१.८९) इति पाणिनीयसूत्रनियमात्, निष्पावो

मकुष्ठः, कंगुः क्षुद्रधान्यम्, एतेषाम्। अथ समुच्चये। तिलतैलस्य योगः पानरूपः चिञ्चाकुलत्थौ निहन्ति। चिञ्चा अम्लिका, कुलत्थः प्रसिद्धः। अब्दनादस्य तण्डुलीयस्य जटा मूलम् आम्रं रसालफलं निहन्ति पाचयति इति योजना। धातूनामनेकार्थत्वाद् उपसर्गपूर्वकत्वाद् वा पाकार्थोऽत्र हन्तिः, अथवा अजीर्णप्रकरणाद् आम्रमित्याम्रभक्षणोद्भवमजीर्णं निहन्तीत्यर्थः।

श्यामाक, नीवार, तिल, अतसी, निष्पाव, कंगू, यव, षष्टिक शालि, इन सब का मन्थ (दधिमन्थ/मथा हुआ एवं घी निकाला हुआ दही) से पाचन हो जाता है। कुलत्थ (कुल्थी) व चिंचा (इमली) को पचाने के लिए तिल का तेल पीना चाहिए।

गोधूममाषौ हरिमन्थमुद्गौ
यवान् सतीनान् कितवो निहन्ति।
यन्मातुलुङ्गीफलमेति पाकं
क्षणेन सोऽयं लवणानुभावः।।२१।।

गोधूमेत्यादि। कितवः ग्रन्थिपर्णः एतान् निहन्ति पाचयति, कान्? गोधूमः सुमनाः, माषो बीजवरः, हरिमन्थश्चणकः, मुद्गः बलाटः, यवस्तीक्ष्ण-शूकः, सतीनः कलायः इति **वोपदेवादयः**। वर्तुल इति **मदनविनोदादयः**। उक्तं च **अपथ्यशमने**ऽपि-

माषगोधूमचणकं सतिलं मुद्गमेव च।
सैयवार्दकफलं वैद्यपाकं धूर्तलेपनञ्चेति।। (.....)

स अयं प्रसिद्धः लवणस्य सैन्धवस्यानुभावः प्रभावः। अयं कः? यत्तु मातुलुङ्गीफलं बीजपूरफलं क्षणेन शीघ्रमेव पाकम् एति प्राप्नोति।

गेहूं, उड़द, हरिमन्थ (चना), मूंग, जौ, सतीन (मटर), इनको कितव (ग्रन्थिपर्ण) पचा देता है। मातुलुंगी फल (निम्बू) लवण से तुरन्त पच जाता है, यह लवण का विशेष प्रभाव होता है।

कर्पूर-पूगीफल-नागवल्ली-

काश्मीर-जातीफल-जातिकोशम्।
कस्तूरिका-सिल्हक-नारिकेल-
जलं पचत्याशु समुद्रफेनः।।२२।।

कर्पूरेत्यादि। समुद्रफेनः अब्धिफेनः प्रसिद्धः, एतानि आशु शीघ्रं पाचयति जारयति। कानि? कर्पूरः सुगन्धद्रव्यं सिताभाख्यम्, पूगीफलं क्रमुकाख्यम्, नागवल्ली ताम्बूलपत्रम्, काश्मीरं कुङ्कुमम्, जातीफलं सुगन्धफलम्, जातिकोशः जातिपत्री, कस्तूरिका मृगमदः, सिल्हकः सिलारसः सुगन्धद्रव्यविशेषः, नालिकेलिफलं प्रसिद्धम्।

कपूर, सुपारी, पान, काश्मीर (केसर), जातीफल (जायफल), जातीकोश (जावित्री), कस्तूरी, सिल्हक (शिलारस/लोबान/एक सुगन्धित द्रव्य) एवं नारिकेल जल (नारियल के पानी) को समुद्रफेन (समुद्र का झाग) पचा देता है।

निम्बूफलेनाप्यथवोषणेन
तक्रेण वा सर्पिरुपैति पाकम्।
तैलानि सर्वाणि तिलादिजानि
प्रयान्ति पाकं किल काञ्जिकेन।।२३।

निम्बूफलेनेत्यादि। घृतं सर्पिः एभिः पाकम् एति प्राप्नोति। एभिः कैः? निम्बूफलम् अम्लफलं प्रसिद्धमेव, अथवा ऊषणेन मरीचेन वा, कोष्णाम्बुना तप्तोदकेन। अपि च काञ्जिकेन धान्याम्लेन तिलादितैलान्यपि पाकं यान्ति आदिशब्दाद् सर्षपोमाप्रभृतीनां तैलाधारद्रव्याणाम्।

निम्बू व काली मिर्च से घी का पाचन हो जाता है। तक्र (छाछ) पीने से भी घी का अजीर्ण दूर हो जाता है। तिल आदि के सभी तेल काञ्जी से पच जाते हैं।

★ *यह पद्य दत्तराम-संस्करण व उसके आधाभूत हस्तलिखित प्रतिलिपियों में भिन्न रूप में उपलब्ध है-*

निम्बूफलेनाप्यथवोषणेन कोष्णाम्बुना वा घृतमेति पाकम्।
तिलादितैलान्यपि काञ्जिकेन सर्जस्य मज्जा पनसामलक्यौ।।

शृङ्गबेररस एव केवलः
क्षारतोयमथवा पलाशजम्।
ऐक्षवं रसमुदस्यति क्षणा-
दग्निवेशमुनिनेदमीरितम्।।२४।।

केवलः एकः शृङ्गबेररसः आर्द्रकद्रवः एव अथवा पलाशजं ब्रह्मतरु-समुत्पन्नं क्षारतोयं क्षारोदकं क्षणात् त्वरितमेव इति भावः। ऐक्षवं रसं इक्षुरसजन्यमजीर्णम् उदस्यति निराकरोति। एतद् रहस्यं अग्निवेशमुनिना ईरितं कथितं प्रकटीकृतमिति भावः।

बिना कुछ मिलाए केवल अदरक का रस अथवा पलाश (ढाक) के क्षार से युक्त जल ईख के रस को तुरन्त पचा देता है। यह बात आत्रेय पुनर्वसु के शिष्य **अग्निवेश मुनि** की कही हुई है।

माहिषे पयसि सिन्धुजं यथा
सैन्धवं कृसरपक्तये तथा।
काञ्जिकं च विदलान्नपक्तये
शीलयन्ति जठराग्निशक्तये।।२५।।

यथा माहिषे पयसि तज्जन्येऽजीर्णे यथा सिन्धुकं टंकणं उपयुज्यते। तथा कृशरपक्तये सैन्धवं युज्यते। तथैव च विदलान्नपक्तये सूप्यान्नस्य जरणाय जठराग्निशक्तये च काञ्जिकं शीलयन्ति।

जैसे सिंधुज (सुहागा) भैंस के दूध को पचा देता है, उसी प्रकार सैंधव (सेंधा नमक) खिचड़ी को पचा देता है। दालों को पचाने के लिए कांजी का शीलन (अभ्यास) करते हैं- अर्थात् दाल खाने पर हुए अजीर्ण में

कांजी बहुत उपयोगी होती है। पाचनशक्ति को बढ़ाने के लिए प्रायः काञ्ज़ी का प्रयोग किया जाता है।

किमत्र चित्रं बहुमांसमत्स्य-
भोजी सुखी स्यात् परिपीय शुक्तम्।
इत्यद्भुतं केवलवह्निपक्व-
मांसेन मत्स्यः परिपाकमेति।।२६।।

किमत्रेत्यादि। अत्र किं चित्रमाश्चर्यकारि यन्मांसं पिशितं, मत्स्याः जलचराः, एतेषां बहुभोजी अत्यर्थं कृताहारः, परिपीतं शुक्तं मद्यविशेषो येन स सुखी स्यात्। अद्भुतमिति, किम्? केवलवह्निपक्वमांसेन शूलादिसंस्कृतेन मत्स्यः पाकमेति।

मांस सहित मछली खाने वाला व्यक्ति शुक्त (सिरका) पीकर सुखी हो जाता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। भाव यह है कि मांस-मछली को सिरका आसानी से पचा देता है। यह भी आश्चर्य की बात है कि केवल आग पर पकाए (भुने हुए) मांस को खाने से उससे पहले खाई मछलियां पच जाती हैं।

कपोत-पारावत-नीलकण्ठ-
कपिञ्जलानां पिशितानि जग्ध्वा।
काशस्य मूलं परिपीय पिष्टं
जनः सुखी स्याद् बहुशो हि दृष्टम्।।२७।।

कपोतपारावतेत्यादि। ना पुरुषः सुखी भवेत्, किं कृत्वा? काशस्य तृणभेदस्य मूलं पिष्टं परिपीय काशमूलसुरसं पीत्वेत्यर्थः। पुनः किं कृत्वा? एतेषां मांसानि जग्ध्वा भुक्त्वा, केषाम्? कपोतः कलरवः, पारावतो वनकपोतः, नीलकण्ठो मयूरः, कपिञ्जलो गौरतित्तिरः। एतद् बहुशो बहुवारम् अनुभूतं कृतप्रत्ययम् अस्माभिरित्यर्थः।

कबूतर, पारावत (परेवा), नीलकण्ठ व कपिंजल (तीतर) का मांस जल में पिसे काँस के मूल को पीने से शीघ्र ही पच जाता है। यह बहुत बार देखा गया है।

कोष्णेन मण्डेन गवां पयस्तु
व्योषै रसाला परिपाकमेति।
शङ्खस्य चूर्णेन हयारिनारी-
पयोदधि क्षिप्रमुपैति पाकम्।।२८।।

व्योषैरिति। व्योषैस्त्रिकटुभिः रसाला शिखरिणी पाकमेति। सुरभी-पयो गोदुग्धम्, कोष्णेन ईषदुष्णेन मण्डेन पाकमेति। तत्र- '**मण्डश्चतुर्दशगुणे सिद्धस्तोये त्वसिक्थकः**' (....) इति। हयादिनार्या महिष्याः पयो दुग्धं दधि च, शङ्खः कम्बु, तस्य चूर्णेन क्षिप्रं शीघ्रमेव पाकमुपैति।

गर्म माँड पीने से गाय का दूध पच जाता है। व्योष (त्रिकटु) से रसाला (सिखरन) पच जाती है। शंख के चूर्ण (शंखभस्म) से हयारिनारी (भैंस) का दूध व दही शीघ्र पच जाता है। हय अर्थात् अश्व का अरि (शत्रु) भैंसा माना जाता है, अतः 'हयारि' शब्द भैंसे के लिए प्रयुक्त होता है तथा 'हयारि-नारी' भैंस के लिए।

शुण्ठी सतीनस्य च नागरङ्ग-
जम्बीरयोः कोद्रवको निहन्ता।
जरामिरा चन्दनगैरिकाभ्या-
मभ्येति तज्जा अपि ये विकाराः।।२९।।

शुण्ठी सतीनस्येत्यादि। शुण्ठी विश्वभेषजं सतीनस्य कलायाख्य-शिम्बिधान्यस्य, कोद्रवः कोरदूषकः नागरङ्गजम्बीरयोरम्लफलयोर्निहन्ता पाचकः। इरा मदिरा चन्दनगैरिकाभ्यामुपयुक्ताभ्यां पाकमभ्येति प्राप्नोति। तज्जा मदिरापानजन्या ये विकारा तेऽपि नश्यन्ति।

सौंठ सतीन (मटर) के अजीर्ण को नष्ट कर देती है तथा कोदो नागरंग (नारंगी/सन्तरा) व जम्बीर के अजीर्ण को नष्ट कर देता है। चन्दन व गैरिक (सोनागेरु) के प्रयोग से इरा (मदिरा) का असर शान्त हो जाता है व उससे होने वाले विकारों का शमन हो जाता है।

★ *दत्तराम संस्करण व उसके आधारभूत प्रतिलिपियों में प्रस्तुत श्लोक के उत्तरार्द्ध भाग का पाठ भिन्न है, जो इस प्रकार है-*

शतावरी गैरिकचन्दनाभ्यामभ्येति पाकं बहुशोऽनुभूतम्।

वटा वेसवारैर्लवङ्गेन फेनी (वटो वेसवाराल्लवङ्गेन-जै.)
शमं पर्पटः शिग्रुबीजेन याति ।
कणामूलतो लड्डुकापूपसट्टादि-
पाको भवेच्छष्कुलीमण्डयोश्च।।३०।।

वट इत्यादि। वेशवारः शुक्तभेदः, तस्माद् वटः माषादिपिष्टेन घृतैस्तैलैर्वा साधितो भक्षविशेषः। उक्तं च- **'माषमुद्गादिपिष्टोत्था वटकादयः स्नेहसिद्धाः'** (...)। लवङ्गेन देवकुसुमेन फेनी भक्षविशेषः। शिग्रुबीजेन बहलक्षदबीजेन पाकमेति। लड्डुको मोदकः, पूपः अपूपः, सट्टको दधितक्रादिसाधितो व्यञ्जनविशेषः। तदुक्तम्-

निःस्नेहं दधि निर्मथ्य पटे शर्करयान्वितम्।
सव्योषदाडिमाजाजिः सट्टकोऽयमुदाहृतः।।

आदि-शब्दात् सूपादिग्रहणम्, एतेषां पाकः। शष्कुली सुहालिका, मण्डः मण्डकः गोधूमपिष्टकृतो भक्षविशेषः। एतयोरपि पाकः कणामूलतः पिप्पलीमूलभक्षणाद् भवति।

उड़द या मूंग आदि के बड़े वेसवार (मसालों) से, फेनी लौंग से व पापड़ शिग्रुबीज से पच जाते हैं। कणामूल (पिप्पलीमूल) से लड्डू, अपूप (पुआ) व सट्ट (दही से बने भक्ष्यविशेष) आदि का पाचन हो जाता है तथा इसी से शष्कुली (पूरी) व माण्ड भी पच जाते हैं।

सट्टक- *सट्ट अथवा सट्टक नाम से प्रसिद्ध एक विशेष प्रकार का भोज्य पदार्थ है। यह दही, खाँड, मसाले व अनारदाना आदि से बनाया जाता है। कैयदेवनिघण्टु-कृतान्नवर्ग (१२०-१२४) में चार प्रकार के सट्टकों का वर्णन है।* ***वेसवार–*** *आयुर्वेद में कुछ विशिष्ट मसालों के मिश्रण को वेसवार कहते हैं। इसका स्वरूप आगे ४८वें श्लोक में इस प्रकार बताया है–*

सैन्धव-त्रिकटु-धान्य-जीरकैर्दाडिमीरजनिरामठान्वितैः।
पाचनोऽथ जठराग्निदीपनो वेसवार उदितो मनीषिभिः।।

सैन्धव (सेंधा लवण), त्रिकटु (सम मात्रा में मिली सौंठ, काली मिर्च व पीपल का चूर्ण) धनिया, जीरा, अनारदाना, हल्दी, व हींग, इन सबके मिश्रण को 'वेसवार' कहते हैं। यह पाचन व जठराग्निदीपन होता है।

श्वाविद्गोधागण्डकाश्चित्रतैला-
द्यावक्षारात् कोलकूर्मादयोऽपि।
मौद्गाद्यूषात् पायसो याति पाकं
सामुद्रादप्यारनालं सुखाय ।।३१।।

जीर्यत्येवं पायसो मुद्गयूषात्-ला.१, मौद्गाद्यूषात् पायसो याति पाकं-......,
मौद्गाद्यूषात् प्रायशो यान्ति पाकं-जै.।

श्वाविदित्यादि। यवस्तीक्ष्णशूकस्तस्य क्षारो यावक्षारस्तस्माद् एते जीर्यन्ति पच्यन्ते। एते के? मृगयायां निजकण्टकैः श्वानं विध्यतीति श्वावित्, सेधाख्यः वनस्थो मृगभेदः। गोधा गोधका पञ्चनखो मृगविशेषः। शल्लकी गात्रसंकोची मृगविशेषः। चित्तलो बिन्दुवान् मृगविशेषः। आदिशब्दाद् रुरु-रंकु-रोहिषादीनां ग्रहणम्, कोलो वराहः, कूर्मः कच्छपः, आदिशब्दाद् रोहिषादिमत्स्यजातीनां ग्रहणम्, एतेऽपि यावक्षाराज्जीर्यन्ति पच्यन्ते। एवममुना प्रकारेण पयसः शृतेः पायसः क्षैरोऽपि मुद्गयूषाद् मुद्गयूषपानात् पच्यते। आरनालं काञ्जिकं सामुद्रलवणाद् सुखाय भवति पाकमुपयाति।

श्वाविद् (सेह), गोधा (गोह), गण्डक (गेंडा), इनके मांस से हुए अजीर्ण को चित्रतेल ( ) नष्ट कर देता है तथा कोल (सूअर) व कूर्म (कछुआ) आदि के मांस से हुए अजीर्ण को यवक्षार (जवाखार) नष्ट कर देता है। खीर खाने से हुए अजीर्ण को मूंग का यूष दूर कर देता है एवं कांजी से हुए अजीर्ण को सामुद्र लवण नष्ट कर देता है।

तप्तं तप्तं हेम वा तारमग्नौ
वारं वारं क्षिप्तमम्भस्यथैतत्।
पीत्वा तोयं दीर्घकालोपपन्न-
मम्भोऽजीर्णं शीघ्रमेवं जहाति।।३२।।

तप्तं तप्तमित्यादि। नरः दीर्घकालोपपन्नं चिरकालोद्भवमपि अम्भोऽजीर्णं शीघ्रमेवावश्यम् आजहाति त्यजति। तत्किम्? अम्भस्सु वह्नौ वारं वारं तप्तं हेम सुवर्णं तारं रूप्यं पुनः पुनः क्षिप्तम्।

तीव्र रूप से तपाये हुए सोने या चाँदी को जिस पानी में बार-बार बुझाया गया हो, वह पानी दीर्घकाल से हुए पानी के अजीर्ण को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

कूष्माण्डकं च त्रपुसीफलं च
कर्कारुचीनातकयोः फलं च।
निहन्ति सद्यो हि करञ्जबीज-
रसं तथैवारणिमूलमेकम्।।३३।।

कूष्माण्डकं वल्लीफलम्, त्रपुसीफलं प्रसिद्धम्, कर्कारु क्षुद्रकूष्माण्डम्, 'कुष्णाण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुः परिकीर्तिता'। चीनारुकयोरिति पाठान्तरम्, तत्र चीनाकर्कटी च आरुकं वीरसेनं चेत्यर्थः। एतत् सर्वं सद्यः त्वरितमेव करञ्जबीजरसं निहन्ति पाचयति।

पेठा, त्रपुसीफल (खीरा), कर्कारु (छोटा पेठा या कोहड़ा), चीनातक (चीनारुक, चीनाकर्कटी), इनसे हुए अजीर्ण को करंजबीज के रस का

सेवन शीघ्र ही नष्ट कर देता है। उक्त अजीर्ण को अरणिमूल (चित्रकमूल) भी नष्ट कर देता है। चतुर्थ चरण में 'तथा वारुणीमूलमेकम्' पाठ मानने पर अर्थ होगा- उक्त अजीर्ण को वारुणी (इन्द्रवारुणी/गडतुम्बे) की जड़ का रस या काढ़ा भी दूर कर देता है।

स्त्रीकेशाम्बु निपीतमाशु हन्यात्
प्राचीनामलकं सपाणिमर्दम् ।
शुण्ठीधान्यकवारि हन्ति सद्य-
स्तांस्तानामविलासजान् विकारान्।।३४।।[१]

१. *मृगे घृतं शशे पानं निशान्ते शीतलं जलम्।*
अन्यमांसविकारेण सदीप्यदधि सैन्धवम्।। (जै.)

स्त्रीकेशाम्ब्विति। स्त्रियाः नार्याः केशाम्बु केशावधू..जलं निपीतं प्राचीनामलकं प्राचीनगरं नाम फलं निहन्ति पाचयति। किम्भूतम्? सपाणिमर्द्दम्, यथा प्राचीनामलकं पाचयति तथैव पाणिमर्द्दं करमर्द्दं सुखेन, फलमिति यावत्। शुण्ठी विश्वभेषजम्, धान्यकं कुस्तुम्बुरु, तयोर्वारि क्वाथादिसाधितं तांस्तान् प्रसिद्धान् आमविलासजान् आमकोपजान् रोगान् हन्ति। उक्तं च **भीमभोजने**ऽपि-

करमर्द्दं महत्काण्डु प्राचीनामलकं तथा।
सुखायते गदार्त्तानां स्त्रीणां केशोदकेन च।। इति। (.....)

असावधानी से स्त्रीकेशमिश्रित जल पीने से हुए विकार को पाणिमर्द (करंज) सहित पीसकर पिया गया प्राचीनामलक (पानी आंवला) दूर कर देता है। सौंठ व धान्याक (धनिया) का क्वाथ पीने से विविध प्रकार के आमजन्य (आंव से हुए) विकार नष्ट हो जाते हैं।

मृगस्य मांसं श्रमजेऽनुकूलं
व्यवायजाते शयनं प्रवाते।
क्षीरोषणासैन्धवसाधितं तु
छागाण्डमुक्तं तदिहैव युक्तम्।।३५।।

मृगस्येत्यादि। श्रमाज्जातः श्रमजः, तस्मिन् रोगे ज्वरादौ मृगस्य हरिणस्य मांसं पिशितम् अनुकूलं योग्यम्, इदं च हेतुविपरीतार्थकमप्यन्नम्। उक्तञ्च- **'ज्वरे श्रमानिलोद्भूते यथा मांसरसोदनम्'** (.....) इति। सुरतावसाने रत्युत्तरकाले, प्रकृष्टो वातो यत्र तत्प्रवातं स्थलम्, तत्र सुप्तिः शयनं हिता। सुरतातिरेके सुरतस्य रतेरतिरेके आधिक्ये, छागो वर्करः, तस्याण्डं मुष्कः उक्तं कथितं पूर्वाचार्यैरिति शेषः। किम्भूतम्? क्षारो यवाग्रजः, ऊषणा पिप्पली, सैन्धवं लवणम्, तैः साधितम्, तैः सह शूल्यकृतमित्यर्थः।

श्रम (थकान) से हुए अजीर्ण में मृग का मांस अनुकूल माना जाता है। व्यवाय (रति) से उत्पन्न अजीर्ण में प्रवात (खुली हवा वाले) स्थान में शयन करना हितकर होता है। इसी (व्यवायज अजीर्ण) में दूध, ऊषणा (पिप्पली) व सैन्धव के साथ पकाया हुआ छाग का वृषण उपयुक्त माना गया है।

स्नेहाजीर्णे रोगिणां मुद्गचूर्णं
हन्यान्मुस्तो हन्ति वैरेचकानाम्।
माषेण्डर्या निम्बमूलेन पाक-
श्चिञ्चा मुञ्चत्यम्लतां चूर्णयोगात्।।३६।।

स्नेहाजीर्णमित्यादि। मुद्गः शिम्बिधान्यम्, तस्य चूर्णं पिष्टं रोगिणां स्नेहाजीर्णं **'घृतं तैलं वसा मज्जा स्नेहः प्रोक्तश्चतुर्विधः'** (...), तस्याजीर्णं निहन्ति पाचयति। शुक्तो मद्यभेदः वैरेचकानां कृतविरेचकानां ज्वालां दाहं निहन्ति। माषाण्डानि माषेण्डरीसञ्ज्ञानि शिम्बिधान्यानि निम्बस्य पिचुमन्दस्य मूलेन पीतेन पाकमुपयान्ति। उक्तञ्च **भीमभोजने-'निम्बमूलेन जीर्येत सदा माषेण्डरी नृणाम्'** (...) इति। चिञ्चा अम्लिका चूर्णयोगात् सुधाक्षारसंयोगात् अम्लताम् अम्लपरिपाकं मुञ्चति त्यजति, मधुरपाकेन पच्यते इत्यर्थः। **'मिष्टः पटुश्च-मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः'** (अ.हृ.सू.-९.२१) इति **वाग्भटात्।**

घी आदि स्निग्ध पदार्थ से हुए अजीर्ण को मूंग का (भुना हुआ) चूर्ण दूर कर देता है। इसी प्रकार दस्त वालों के अजीर्ण को मोथा नष्ट कर देता है तथा माषेण्डरी (उड़द के आटे से बने भोज्यविशेष) के अजीर्ण को निम्बमूल (नीम की जड़ का क्वाथ) दूर कर देता है। इमली की अम्लता (खटाई) चूर्ण (चूने) के मेल से दूर हो जाती है। भाव यह है कि इमली के साथ चूने का प्रयोग करने से अम्लताजन्य विदग्धाजीर्ण अथवा अन्य अजीर्ण विकार नहीं होते हैं। चूने में कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है, अतः यह अम्लता-निवारक होता है। इसीलिए अम्लपित्त आदि में शंखभस्म जैसी कैल्शियम की अधिकता वाली आयुर्वेदीय औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं।

★ *यह पद्य दत्तराम-संस्करण व उसकी आधारभूत हस्तलिखित प्रतिलिपियों में भिन्न रूप में मिलता है-*

स्नेहाजीर्णं रोगिणां मुद्गचूर्णं ज्वालाशुक्तो हन्ति वैरोचिकानाम्।
माषाण्डानि निम्बमूलेन पाकं चिञ्चा मुञ्चत्यम्लतां चूर्णयोगात्।।४५।।

कोष्णाम्बु पिष्टान्नभवे हि देयं
प्रियालमज्जास्विदमेव पेयम्। (०मेव देयम्-जै.)
मात्स्यं तु माकन्दफलं निहन्ति
गोधूमकं कर्कटिका निहन्ति।।३७।।

पिष्टान्नभवेऽजीर्णे कोष्णाम्बु देयम्, एतद्धि तत् सुखेन जरयति। प्रियाल-मज्जासु इदमेव पेयं पातव्यं पथ्यत्वात्। मात्स्यं मत्स्यभक्षणोद्भवमजीर्णं माकन्दफलम् आम्रफलं निहन्ति नाशयति। गोधूमजं चाजीर्णं कर्कटिका निहन्ति निवारयति।

पिष्टान्न (आटे से बने भोज्यपदार्थों) से हुए अजीर्ण में कोष्णाम्बु (थोड़ा गर्म जल) पिलाना चाहिए। प्रियाल (चिरौंजी) की मज्जा (गिरी) से हुए अजीर्ण में भी कोष्णाम्बु (थोड़ा गर्म जल) पीने से लाभ होता है। मछली

से हुए अजीर्ण को माकन्द (आम्रफल) नष्ट कर देता है तथा गेहूं से हुए अजीर्ण को ककड़ी दूर कर देती है।

सद्य: प्रियालं विनिहन्ति पथ्या
मध्वम्ब्वजीर्णं विनिहन्ति पथ्या।
पिण्डालुक: कोद्रवपाककारी
खण्डस्तु माषान्नविकारहारी।।३८।।

(पिवदन्ति पथ्या-जै.)

पथ्या हरीतकी सद्य: क्षिप्रमेव प्रियालं प्रियालजन्यमजीर्णं विनिहन्ति नाशयतीति। मध्वम्ब्वजीर्णम् अपि सा विनाशयति। पिण्डालुक: कोद्रव-पाककारी कोद्रवधान्यं जरयति। खण्ड: शर्करा तु माषान्नविकारहारी माषकृतमजीर्णम् अपहरति।

प्रियाल तथा मधुजल (शहद के शर्बत) से हुए अजीर्ण को हरड़ शीघ्र ही नष्ट करती है। कोदो से हुए अजीर्ण में पिण्डालुक (अरबी/घुइयाँ) हितकारी होता है एवं उड़द से हुए विकारों में खाँड लाभदायक होती है।

मुखं दह्यते चूर्णकेन प्रमादा-
द्यदा नागवल्लीदलस्थेन पुंस: ।
सितातैलसौवीरकैस्तन्निवृत्ति:
पृथक् तस्य गण्डूष एवोपदिष्ट:।।३९।।

प्रमादाद् अनवधानात् मात्राधिक्यवशाद् यदा नागवल्लीदलस्थेन ताम्बूलपत्रगतेन चूर्णकेन सुधया पुंस: ताम्बूलसेविन: मुखं दह्यते दाहमुपगच्छति, तदा सितातैलसौवीरकै:- सिता शर्करा, तैलं तिलोद्भवं सौवीरं यवकाञ्जिम्, इत्येतै: प्रयुक्तै: तन्निवृत्तिर्भवति दाहशान्तिर्जायत इत्यर्थ:। एतस्य चूर्णाधिक्य-जन्यस्य दाहस्योपशान्तये पृथक् व्यस्तत्वेन तस्य पूर्वोद्दिष्टस्य त्रितयस्यापि गण्डूष उपदिष्ट निर्दिष्ट: वैद्यैरिति शेष:।

प्रमादवश (अधिक मात्रा में) पान पर लगे चूने से जब मनुष्य का मुख जलने लगे तो शर्करा, तिल का तेल व सौवीरक (जौ से बनी कांजी)- इन सब को मिला कर मुख में लेने से जलन दूर हो जाती है। चूने से हुई उक्त प्रकार की जलन में पूर्वोक्त तीनों वस्तुओं से पृथक्-पृथक् गण्डूष (कुल्ला) करना भी लाभदायक बताया गया है।

★ *प्रस्तुत पद्य के स्थान पर दत्तराम-संस्करण व उसकी आधारभूत हस्तलिखित प्रतिलिपियों में निम्न पद्य मिलता है। इसका भाव तो समान ही है, परन्तु छन्द भिन्न है-*

ताम्बूलमध्य-स्थित-चूर्णकेन संदह्यते यस्य मुखं नरस्य।
तैलेन वा केवलकाञ्जिकेन सुखाय गण्डूषमसौ विदध्यात्।।४६।।

उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्ण-
मम्लेन च क्षारगुणो गुणाढ्य:।
स्नेहेन तीक्ष्णं वमनातियोगे
सिता हिता स्यादिति काशिराज:।।४०।।

उष्णेनेत्यादि। काशिराज इत्याह। इति किम्? शीतं शीतगुणं द्रव्यं सामान्यत: उष्णेनोष्णगुणेन द्रव्येण गुणाय गुणं विधातुम् इत्यर्थ:। उष्णम् उष्णगुणं द्रव्यं शीतेन शीतगुणेन द्रव्येण गुणाय गुणं विधातुं भवति। क्षारो गुण: यवक्षारादिसमूह: अम्लेनाम्लरसेन द्रव्येण गुणाय भवति। एवं तीक्ष्णं मरीचादि तीक्ष्णरसं स्नेहेन घृतादिना गुणाय भवति। वमनातियोगे छर्द्याधिक्ये सिता मत्स्यण्डी हिता छर्दिहरा स्यादित्यर्थ:। '**तुमर्थाच्च भाववचनात्**' (अष्टा०-१.३.१५) इति सर्वत्र चतुर्थी।

शीतल पदार्थ के खाने से हुए अजीर्ण को उष्ण पदार्थ से तथा उष्ण पदार्थ के खाने से हुए अजीर्ण को शीतल पदार्थ के सेवन से दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार खारे पदार्थ से हुए अजीर्ण को अम्ल पदार्थ से व अम्ल भोज्य के अजीर्ण को क्षार रस वाले भोज्य के सेवन से नष्ट किया

जाता है। इसी प्रकार तीक्ष्ण पदार्थ से हुए अजीर्ण को (घृत आदि) स्निग्ध पदार्थ के सेवन से दूर किया जाता है। अधिक वमन होने पर खाँड हितकारी होती है, ऐसा वैद्यशिरोमणि काशिराज (दिवोदास) का मत है।

वमनवस्तिविरेचनभेषजं
यदिह कर्म निजं कुरुतेऽखिलम्।
तदिह विश्वयवासकसाधितं
पिबत पाचनकं रजनीमुखे।।४१।। (जै.,ला.१)

शरीर शोधन के लिए ली जाने वाली वमन, वस्ति एवं विरेचन की औषधियाँ जो काम करती हैं वह सब काम विश्वभेषज (सौंठ) और यवासक (जवासा) से साधित (पानी के साथ पकाया गया) पाचनक ही कर देता है। इसे सायंकाल पीना चाहिए। भाव यह है कि वमन, विरेचन, वस्ति की औषधियों से जो लाभ मिलता है, वह सब इसके पीने से मिल जाता है। इस प्रकार यह दोषों व मलों का निवारण कर अजीर्ण को नष्ट कर देता है।

शीतोदकं नस्यजरोगहारि
नारीपयश्चाञ्जनरुग्विदारि।
रालोदकं धूमगदेषु शस्तं
धात्रीफलं चातिविरेचनार्ते।।४२।।

धात्रीफलं चातिविरेचनार्ते- ..., धात्रीप्रलेपोऽतिविरेचनार्ते-ला.१, धात्रीप्रलेपोऽतिविरेचनोत्थे-ला.टीका, धात्रीप्रलेपोऽतिविरेचनान्ते-जै.।

शीतोदकमित्यादि। शीतलजलं, नासिकया पीयते यद् भेषजं तन्नस्यम्, तस्माद् जातो यो रोगः, तस्य हारि नाशकम्। नारिपयः स्त्रीदुग्धम्, अञ्जनं नेत्रभेषजम्, तद्भवस्य रोगस्य विनाशकारकम्। धूमगदे धूमपानोत्थे गदे रोगे रालः सर्जरसः, तेन सहितम् उदकं प्रशस्तम्। अतिविरेचनोत्थे गदे दाहशोषादौ, धात्री आमलकी, तस्याः फलस्य प्रलेपः उपलेपः प्रशस्तः।

शीतल जल नस्य के अतियोग से होने वाले रोगों को दूर करता है तथा स्त्री का दूध नेत्ररोगों को नष्ट करता है। इलायची का जल धूमपान के अधिकता से हुए रोगों को नष्ट करता है। आंवला अति विरेचन (दस्त) से क्षीण व्यक्ति के लिए हितकर होता है। यहाँ पद्य के चतुर्थ चरण में- **'धात्रीप्रलेपोऽतिविरेचनेषु'** पाठान्तर मिलता है। इसके अनुसार अर्थ होगा– अतिविरेचन होने पर आंवले की लुगदी का उदर पर लेप करना लाभकारी होता है।

श्रवणपूरणजे तिलतैलजं
श्रवणपूरणमेव सुखं विदुः।
कवलजेषु गदेष्वथ कारयेत्
कवलमार्द्रयुतं द्रवजं पुनः।।४३।।

०मार्द्रकजद्रवजं-जै.

श्रवणेत्यादि। श्रवणपूरणं रसादिना, तद्भवे गदे तिलतैलत एव श्रवणपूरणं रसादिकर्णपूरणं सुखं सुखकरं विदुः। अथ कवलजेषु कवलग्रहणे जाते पुनः आर्द्रकजो यो द्रवो रसः तद्भवं कारयेद् भिषग् इति शेषः।

कान में तेल भरने से हुआ विकार तिल के तेल से कान भरने पर नष्ट हो जाता है। कवलग्रह (तीक्ष्ण औषधयुक्त कुल्ला लेने की चिकित्साविधि में असावधानी) से हुए विकार (जलन आदि) को ठीक करने के लिए आर्द्रता युक्त द्रवज (गुड़) का कवलग्रह (कुल्ला) करवाना चाहिए।

मदयति न हि मद्यं जातु चेत् पीतमद्यः
पिबति घृतसमेतां शर्करामेव सद्यः।
अथ घनमधुकैलाकुष्ठदार्वेलवालु-
प्रकटितकबलास्ये मद्यगन्धोऽपि न स्यात्।।४४।।

मदयतीति। जातु कदाचिदपि मद्यं मदिरा नरं न मदयति उन्मादयुक्तं न करोति, चेत् पीतमद्यः पीतं मद्यं येन स पुरुषः सद्यः मद्यपानोत्तरकालं घृतसमेतां सर्पिर्मिश्रितां शर्करां पिबति। अथ अनन्तरं घनो मुस्तं, मधुकं मधुयष्टिका, एला त्रुटिः, कुष्ठं परिभाव्यं, दारु देवदारु, एलवालो हरिवालुकं सुगन्धि द्रव्यम्, एभिर्द्रव्यैः प्रकटितः कवलो यस्मिन् तत् प्रकटितकवलम्, ईदृशं यद् आस्यं मुखं तस्मिन् मद्यस्य गन्धः मदिरागन्धोऽपि न स्यात्।

शराब पीने के तुरन्त बाद शराबी यदि घी और शक्कर को मिलाकर पी ले तो शराब नशा नहीं करती है। घन (नागरमोथा), मधुका (मुलेठी), इलायची, कूठ, दारु (दारुसिता/दालचीनी) व एलवालु (हिन्दी में एल्वा नाम से प्रसिद्ध सुगन्धित द्रव्यविशेष), इन सब को ग्रास (निवाला) बनाकर मुख में रखने से शराब की गन्ध भी नहीं आती है।

एलामृताम्भोधरकट्फलानां
चूर्णं यथापूर्वविवर्द्धितानाम्।
विमर्द्य वक्त्रे धृतमाशु हन्ति
सुरारसोनादिजमुग्रगन्धम् ।।४५।।

एलेत्यादि। एषां चूर्णं वक्त्रे मुखे विमर्द्य प्रचर्व्य धृतं सुरारसोनादिजम् उग्रगन्धम् आशु हन्ति नाशयति। केषाम्? एला त्रुटिः, आर्द्रकः शृंगवेरः, अम्भोधरो मुस्तम्, चन्दनं हरिचन्दनम्। किम्भूतानाम्? यथापूर्वमिति चन्दनस्य भागैकम्, मुस्तस्य भागद्वयम्, आर्द्रकस्य भागत्रयम्, एलाया भागचतुष्टयमिति यथापूर्वक्रमं विवर्द्धितानां द्विगुणितानाम्।

इलायची, गिलोय, अम्भोधर (भद्रमुस्ता/मोथा) व कट्फल (कायफल), इन सबका चूर्ण बना लें, इसमें पूर्व-पूर्व वाले द्रव्य की मात्रा अधिक होनी चाहिए। इसे थोड़े पानी के साथ पीसकर मुख में रखने से शीघ्र ही शराब व लशुन आदि की तीव्र गन्ध नष्ट हो जाती है।

कतिपय हस्तलिखित प्रतियों में इस पद्य के आरम्भ में 'माष' के स्थान पर 'एला' (इलायची) पाठ है, यह उचित प्रतीत होता है।

कूष्माण्डकस्य स्वरसो गुडेन
पीतो मदं कोद्रवजं निहन्ति।
पयो निपीतं सितया समेत-
मुन्मत्त-मत्तत्वमपाकरोति ।।४६।।

कूष्माण्डकस्येति। कूष्माण्डकः पुष्पफली, तस्य सुरसः गुडेन सह निपीतः कोद्रवजं कोरदूषकजं मदं निहन्ति दूरी करोति। सितया शर्करया सहितं पयो गोदुग्धम् निपीतम्, उन्मत्तस्य उन्मादरोगग्रस्तस्य मत्तत्वमुन्मत्तताम् अपाकरोति दूरी करोति।

पेठे का रस गुड़ के साथ पीने से कोद्रव (कोदो नामक धान्य) से हुआ अजीर्ण नष्ट हो जाता है। शर्करा के साथ दूध पीने से उन्मत्त (नशा युक्त व्यक्ति) की उन्मत्तता दूर हो जाती है।

घ्रात्वा स्वकक्षां विपिनोपलं वा
सम्प्राश्य किञ्चिल्लवणं नरो वा।
शीताम्बु पीत्वा चुलुकेन वापि
प्रसह्य पूगीमदमुज्जहाति।।४७।।

घ्रात्वेत्यादि। नरः प्रसहत्वेन पूगीफलं पूगीफलजं मदम् उज्जहाति। किं कृत्वा? स्वकक्षां बाहुमूलं सगन्धं घ्रात्वा आघ्राय, विपिनोपलं यवासशर्करां वा किञ्चिदिति मात्रातो न्यूनामपि सम्प्राश्य भुक्त्वा वा, पटुशर्करा (शर्करा)भेदस्तां प्राश्य वा, चुलुकेन प्रसृत्या शीताम्बु शीतजलं पीत्वा (वा)। वाशब्देन योगत्रयं सूचितम्।

अपनी कक्षा (कांख) की गंध को सूंघने से अथवा विपिनोपल (जंगली उपलों की गंध) सूंघने से सुपारी का नशा उतर जाता है। थोड़ा

नमक खाने से या चुल्लु भर-भर कर शीतल जल पीने से भी सुपारी का नशा दूर हो जाता है।

★ इसके अनन्तर दत्तराम संस्करण व उसकी आधारभूत प्रतिलिपियों में वेशवार-विषयक एक अन्य श्लोक इस प्रकार उपलब्ध होता है-

विश्वौषध-चपलोषण-सैन्धव-धान्याक-हिंगु-राजीभिः।
करकाजाजियुताभिर्गदितो मुनिभिस्तु वेशवारोऽयम्।।

इसका अर्थ है- सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, सैन्धव लवण, हींग, राई, करक (अनार) तथा अजाजि (जीरा), इन सबके मिश्रण से वेशवार बनता है।

सैन्धव-त्रिकटु-धान्यजीरकै-
र्दाडिमीरजनिरामठान्वितैः । नागरान्वितै-जै. पाठा.
पाचनोऽथ जठराग्निदीपनो
वेसवार उदितो मनीषिभिः।।४८।।

सैन्धवेत्यादि। मनीषिभिर्वैद्यैरत्र आयुर्वेदे अयं वेसवारः उदितः कथितः। कैः ? सैन्धवं लवणं, त्रिकटु शुण्ठी-मरिच-पिप्पल्यः, धान्यं कुस्तुम्बुरु, जीरकम् अजाजी। किम्भूतैरेतैः ? दाडिमी शुकप्रिया, रजनी हरिद्रा, रामठं हिंगु, एतद्युक्तैः। किम्भूतः ? पाचनः आमपाचनः, पुनः जठराग्नेर्दीपनो वर्द्धनः।

सैन्धव (सेंधा नमक), त्रिकटु (सम मात्रा में मिली सौंठ, काली मिर्च व पीपल का चूर्ण) धनिया, जीरा, अनारदाना, हल्दी, हींग, इन सबके मिश्रण से बना वेसवार (वेशवार) जठराग्नि व आम-पाचक व जठराग्नि-वर्धक होता है, ऐसा आयुर्वेद-मनीषियों का कथन है।

गुडमधुकाञ्जिकतक्रविभागाः
स्युर्द्विगुणास्तु यथोत्तरमेते ।
त्रीणि दिनानि च धान्यसमूहे

स्थापितमेतदुशन्ति हि शुक्तम्।।४९।।

गुडमध्वित्यादि। भिषजः तत् शुक्तम् उशन्ति वदन्ति। किम्? यत्र एते गुडादिविभागा यथोत्तरं द्विगुणा स्युः। गुडः प्रसिद्धः, मधु माक्षिकम्, काञ्जिका, तक्रम्। अथानन्तरं त्रीणि दिनानि दिनत्रयं यावद् धान्यकुशूले धान्यकुशूलमध्ये स्थापितं धारितम् इति।

गुड़, मधु, काञ्जी व तक्र को उत्तरोत्तर दुगनी मात्रा में लें, अर्थात् गुड़ से दुगना मधु, मधु से दुगनी काञ्जी तथा काञ्जी से दुगना तक्र (छाछ) होना चाहिए। इन सबको मिट्टी के पात्र में भरकर अच्छी प्रकार से ढक्कन के साथ मुंह बन्द करें तथा तीन दिन तक धान्य की ढेरी में दबाकर रख दें। इस विधि से मधुशुक्त तैयार होता है।

शुक्तमुक्तमपि तद् बहुभेदं
हन्ति सर्वमिदमामजखेदम्।
यन्मया समुदितं मधुशुक्तं
तद्भिषग्भिरपि पाचनमुक्तम्।।५०।।

शुक्तमुक्तमित्यादि। भिषग्भिर्वैद्यैर्बहुधा बहुभेदं नानाप्रकारमपि यत् शुक्तमुक्तं तत् सर्वम् आमजम् आमोद्भवं खेदं श्रमं हन्ति। अथ मया यत् मधुशुक्तम् अत्र गदितम्, भिषग्भिस्तत् पाचनमुक्तं गदितम्।

बहुत प्रकार का शुक्त (सिरका) भी आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बताया गया है, जो सभी आम रोगों का नाश करता है। मैंने (अजीर्ण-मञ्जरीकार ने) इससे पूर्व (श्लोक-४९ में) जो 'मधुशुक्त' कहा है, वह भी वैद्यों के द्वारा आम-पाचन करने वाले शुक्त के रूप में मान्य है।

तत्तन्महाजीर्णविषापनेत्री
जीयाच्चिरायामृतमञ्जरीयम्।
सत्षट्पदानन्दमयीमसन्तो
घुणा इवैनामवधीरयन्तु।।५१।।

इवैनामुपकारयन्तु-ला.टीका, इवैनामवधारयन्तु-जै., इवैनामविधारयन्तु-ला.१, इवैनामवधीरयन्तु-.........।

किम्भूतेयम्? तेषां तेषां पूर्वोक्तद्रव्याणां महान्ति कुपितान्यजीर्णान्येव च विषरूपाणि, तेषाम् अपनयतीत्यपनेत्री नाशकर्त्री। अथवा तानि तान्याम-विदग्धादीनि। किम्भूतः काशिनाथः? अनवद्या स्तुत्या विद्या आयुर्वेदबोधरूपा यस्य सः।

अथ ग्रन्थसमाप्तिं विधाय तत्प्रचारणकामो ग्रन्थकारो दुर्जनान् प्रार्थयति- **असन्त इति।** असन्तो भोः दुर्जनाः! एनामुपकारयन्तु मा दूषयन्तु। के इव? घुणाः कृमयः इव। यथा कृमयः अन्याभावे अमृतमञ्जरीम् अमृतवृक्षादिमञ्जरीं केसरदलादि-त्रोटनेन दूषयन्ति तथा असन्त एनां मा दूषयन्तु। किम्भूतामपि? सन्तो विद्वांसस्त एव यदा भ्रमराः सारग्राहकत्वात्, तेषाम् आनन्दमयीं प्रचुरानन्दाम् इत्यर्थः।

उस उस प्रकार के विविध अजीर्ण को दूर करने का उपाय बतलाने वाली यह अमृतमञ्जरी (पुस्तिका) चिरकाल पर्यन्त अपने विषय में सर्वोत्कृष्टतया विरामजान रहे। सज्जनरूपी षट्पदों (भ्रमरों) के लिए आनन्दमयी बनी हुई इस अमृतमञ्जरी को दुर्जन घुणों के समान भले ही अवधीरित (अवहेलित) करते रहें, इसकी कोई चिन्ता नहीं।

पद्यैर्मुनीनामनवद्यपद्या
श्रीकाशिनाथेन शिशोः सुखाय।
स्फुटीकृताजीर्णविषापहन्त्री
जीयाच्चिरायामृतमञ्जरीयम्।।५२।।

....

प्राचीन मुनियों के पद्यों के आधार पर श्रीकाशिनाथ ने यह अनवद्य (अनिन्दित) पद्यों वाली, अजीर्णरूप विष का नाश करने वाली **अमृतमञ्जरी** शिशुजन के सुखपूर्वक बोध के लिए बनाई है। यह चिरकाल तक

सर्वोत्कृष्टतया विद्यमान रहे।

।। इत्यजीर्णरोगशमनेऽजीर्णामृतमञ्जरी समाप्ता[१] ।।

१. यह वाक्य **ला.१** में उपलब्ध है। इसके आगे पुस्तक का प्रतिलिपि-काल इस प्रकार लिखा है- '**सं०१७२० पोस सुदि ९ सोमे लिखिता**' अर्थात् यह प्रतिलिपि विक्रम संवत् १७२० के पौष मास की नवमी तिथि, सोमवार को लिखी गई।

परिशिष्ट-१.

अजीर्णशमन-तालिका

द्रव्यविशेषजन्य अजीर्ण -एवं-	उसके शमन हेतु पथ्य	
		(पद्य-२)
नारीकेरफल	तण्डुलजल	
रसाल (आम)	क्षीर (दूध)	
घृत	जम्बीर (नींबू) का रस	
मोचाफल (केला)	घृत	
गोधूम (गेंहू)	कर्कटी (ककड़ी)	
मांस	काञ्जी	
नारंगी	गुड़	
पिण्डालुक (घुइया)	कोद्रव (कोदो)	
पिष्टान्न (आटे से बने भोज्य)	जल	**(पद्य-३)**
प्रियाल (चिरौंजी)	हरड़	
माष (उड़द)	खाँड	
क्षीर	तक्र	
कोलाम्र (आम्र विशेष)	गुनगुना पानी	
आम्र	,,	
मत्स्य	आम्र	
अधिक मदिरापान	शहद का पानी	
पुष्कर (कमलगट्टा)	कड़वा तेल	

पनस (कटहल)	केला	**(पद्य-४)**
कदलीफल	घृत	
घृत	जम्बीररस	
जम्बीररस	लवण	
लवण	तण्डुलजल	
नारियल	तण्डुल (चावल)	**(पद्य-५)**
तालबीज	,,	
तण्डुल	क्षारवारि (यवक्षार आदि से मिश्रित जल)	
दाडिम (अनार)	बकुल (मौलसिरी)	**(पद्य-६)**
आमलक (आंवला)	,,	
ताल	,,	
तिन्दुकी (तेन्दु)	,,	
बीजपूर (बिजौरा नींबू)	,,	
लवली (हरफारवेड़ी)	,,	
बकुल (मौलसिरी)	बकुलमूल	
मधूक (महुआ)	पिचुमन्दबीज (निम्बोली)	**(पद्य-७)**
मालूर (बिल्वफल)	,,	
नृपादन (खिरनी)	,,	
परूष (फालसा)	,,	
खर्जूर	,,	
कपित्थ (कैंथ)	,,	
बीजपूर (बिजौरा नींबू)	सिद्धार्थक (श्वेत सरसों)	

मृणाल (कमलनाल)	भद्रमुस्त (नागरमोथा)	**(पद्य-८)**
खर्जूर	”	
हारहूर (मुनक्का)	”	
कसेरू	”	
शृङ्गाटक (सिंघाडा)	”	
शर्करा	”	
रसोन (लशुन)	दूध	
आम्रातक (आमडा)	पर्युषित (बासी) जल	**(पद्य-९)**
उदुम्बर (गूलर)	”	
पिप्पली	”	
प्लक्ष (पिलखन)	”	
वट	”	
आम्र	सौवर्चल (संचर नमक)	
सौवीर (बेर)	गर्म जल	**(पद्य-१०)**
प्राचीनामलक	राजिका (राई)	
खर्जूर	क्षीरी (खिरनी)	
परूष (फालसा)	”	
प्रियाल (चिरौंजी)	”	
तालफल	काली मिर्च	
बिल्व	नागर (सौंठ)	**(पद्य-११)**
जामुन	”	
तिन्दुकी (तेन्दु)	शर्करा	
बकुल (मौलसिरी)	जीरा	

कपित्थ (कैंथ)	मधुरिका (सौंफ)	
पनस (कटहल)	सर्जतरु (शाल) के बीज	**(पद्य-१२)**
आमलक	,,	
सभी फल	कटुतिन्दुक (कड़वा तेंदु)	
पनस (कटहल)	आम की बिना सूखी गुठली	**(पद्य-१३)**
रसाल (आम)	घनराव (चौंलाई) का मूल	
अपूप (पुआ)	जल में मिली अजवाइन	
पृथुक (पोहा)	,,	
पालङ्क्किा (पालक)	सिद्धार्थक (श्वेत सरसों)	**(पद्य-१४)**
केमुक (कन्दविशेष)	,,	
कारवल्ली (करेला)	,,	
वार्ताक (बैंगन)	,,	
वंशांकुर (बांस के अंकुर)	,,	
मूली	,,	
उपोदिका (पोई)	,,	
अलाबु (घीया/लौकी)	,,	
पटोल (परवल)	,,	
मेघरव (चौलाई)	,,	
		(पद्य-१५)
पटोल (परवल)	ब्रह्मतरु (पलाश) के क्षार से मिश्रित जल	
वंशाङ्कुर	,,	
कारवल्ली (करेला)	,,	
अलाबु (लौकी)	,,	

वास्तूक (बथुआ)	खदिर-क्वाथ	**(पद्य-१६)**
सिद्धार्थक (श्वेत सरसों)	,,	
चुञ्चु (चेवुना)	,,	
सूरण (जिमिकन्द)	गुड	
नागरङ्ग (सन्तरा)	,,	
आलुक (आलू)	तण्डुलजल	
सब पत्र पुष्प, फूल, मूल आदि के शाक	तिलक्षार	**(पद्य-१७)**
पिशित (मांस)	आम्रबीज	**(पद्य-१८)**
पनस (कटहल)	,,	
कृशर (खिचड़ी)	सैन्धव लवण	
भैंस का दूध	,,	
चिपिट (चिवड़ा)	पिप्पली व दीप्यक (अजवायन)	
दाल	तुषाम्बु (धान्याम्ल)	
		(पद्य-१९)
पिष्टान्न (आटे से बने भोज्य पदार्थ)	लवण मिलाकर उबाली हुई काञ्जी	
सर्पि: (घृत)	यवशूक (तुषाम्ल) से बनी काञ्जी	
मांस	गर्म जल	
श्यामाक	मन्थ (दधिमन्थ)	**(पद्य-२०)**
नीवार	,,	
तिल	,,	

अतसी	,,	
निष्पाव	,,	
कङ्गू	,,	
यव	,,	
षष्टिक (सांठी चावल)	,,	
कुलत्थ (कुल्थी)	तिलतैल	
चिञ्चा (इमली)	,,	
गोधूम (गेंहू)	कितव (ग्रन्थिपर्ण)	**(पद्य-२१)**
माष (उड़द)	,,	
हरिमन्थ (चना)	,,	
मुद्ग (मूंग)	,,	
यव (जौ)	,,	
सतीन (मटर)	,,	
मातुलुंगी (निम्बू)	लवण	
कर्पूर	समुद्रफेन	**(पद्य-२२)**
पूगीफल (सुपारी)	,,	
नागवल्ली (पान)	,,	
काश्मीर (--------)	,,	
जातीफल (जायफल)	,,	
जातीकोश (जावित्री)	,,	
कस्तूरी	,,	
सिल्हक (एक सुगन्धित द्रव्य)	,,	
नारिकेल जल	,,	

सर्पि: (घी)	निम्बू/काली मिर्च/तक्र	**(पद्य-२३)**
तिलादि के सभी तेल	काञ्जी	
		(पद्य-२४)
इक्षुरस (गन्ने का रस)	शृङ्गबेर (अदरक) का रस अथवा पलाश के क्षार से युक्त जल	
भैंस का दूध	सिंधुज (सुहागा)	**(पद्य-२५)**
कृसर (खिचड़ी)	सैन्धव लवण	
विदलान्न (दाल)	काञ्जी	
मांस	शुक्त (सिरका)	**(पद्य-२६)**
मत्स्य (मछली)	शुक्त (सिरका) और आग पर पकाया मांस	
कपोत (कबूतर) का मांस	जल में पिसा कांसमूल	**(पद्य-२७)**
पारावत (परेवा) का मांस	,,	
नीलकण्ठ का मांस	,,	
कपिञ्जल (तीतर) का मांस	,,	
गोदुग्ध	गर्म मांड	**(पद्य-२८)**
रसाला (सिखरन)	व्योष (त्रिकटु)	
हयारिनारी (भैंस) का दूध व दही	शङ्खभस्म	
सतीन (मटर)	शुण्ठी (सौंठ)	**(पद्य-२९)**

नागरंग (नारंगी)	कोद्रव (कोदो)
जम्बीर	,,
इरा (मदिरा)	चन्दन व गैरिक (सोनागेरु)

(पद्य-३०)

वट (बड़े)	वेसवार (विशिष्ट मसालों का मिश्रण)
फेनी	लवङ्ग (लौंग)
पर्पट (पापड़)	शिग्रुबीज
लड्डू	कणामूल (पीपली)
अपूप (पुआ)	,,
सट्टा (दही से बना भक्ष्यविशेष)	,,
शष्कुली (पूरी)	,,
मण्ड	,,

(पद्य-३१)

श्वावित् (सेह) का मांस	चित्रतेल
गोधा (गोह) का मांस	,,
गण्डक (गेंडा) का मांस	,,
कोल (सूअर) का मांस	यवक्षार
कूर्म (कछुए) का मांस	,,
पायस (खीर)	मूंग का यूष
आरनाल (काञ्जी)	सामुद्र लवण

(पद्य-३२)

पानी	सोने-चांदी से बुझाया हुआ पानी

कूष्माण्डक (पेठा)	करञ्जबीज	**(पद्य-३३)**
त्रपुस (खीरा)	,,	
कर्कारु (कोहड़ा)	,,	
चीनातक	,,	
रसाजीर्ण	अरणिमूल	
स्त्रीकेशमिश्रित जल	पणिमर्द (करञ्ज) सहित पीसा गया आंवला	**(पद्य-३४)**
समस्त आमजन्य विकार	शुण्ठी (सौंठ) व धनिये का क्वाथ	
श्रमजनित अजीर्ण	मृगमांस	**(पद्य-३५)**
व्यवाय (रति) से अजीर्ण	खुली हवा वाले स्थान में शयन	
स्नेह (घी आदि स्निग्ध पदार्थ)	मुद्गचूर्ण	**(पद्य-३६)**
दस्त वालों का अजीर्ण	मोथा	
माषेण्डरी (उड़द के आटे से बने भोज्यविशेष)	निम्बमूल का क्वाथ	
इमली की अम्लता	चूर्ण (चना) का योग	
पिष्टान्न	कोष्ण जल	**(पद्य-३७)**
प्रियाल (चिरौंजी की गिरी)	,,	
मछली	माकन्द (आम्र)	
गेहूं	ककड़ी	
प्रियाल (चिरौंजी)	पथ्या (हरड़)	**(पद्य-३८)**
मधुजल (शहद का शर्बत)	,,	

कोद्रव	पिण्डालुक (अरबी)
माष (उड़द)	खांड
	(पद्य-३९)
पान के चूने से मुख जलना	शर्करा, तिलतैल, सौवीरक (जौ से बनी काञ्जी) से मुखपूरण अथवा इनसे अलग-अलग गण्डूष (कुल्ला) करना
शीतल गुण वाले भोज्य	उष्ण गुण वाले भोज्य **(पद्य-४०)**
उष्ण गुण वाले भोज्य	शीतल गुण वाले भोज्य
क्षार	अम्ल
तीक्ष्ण	स्नेहयुक्त पदार्थ
अतिवमन	खाँड
नस्य का अतियोग	शीतल जल **(पद्य-४२)**
नेत्ररोग	स्त्री का दूध
धूम्रपान	राल का पानी
अति विरेचन	उदर पर आंवले का लेपन
	(पद्य-४३)
कान में तेल पूरण से हुआ विकार	तिल तेल से कर्णपूरण
कवलग्रह से हुआ विकार	आर्द्रतायुक्त द्रवज (गुड़) का कवलग्रह
	(पद्य-४४-४५)
सुरा रसोनादि की तीव्र गन्ध दूर करने में	एला, अमृता, मुस्ता व कट्फल के चूर्ण का मुख में धारण करना

कोद्रव (कोदो)	गुड़ सहित पेठे का रस	**(पद्य-४६)**
उन्मत्त की उन्मत्तता	शर्करायुक्त दूध	
		(पद्य-४७)
सुपारी का नशा	१. स्वकक्षा (अपनी कांख) की तीव्रगन्ध को सूंघना २. विपिनोपल को सूंघना ३. कुछ मात्रा में नमक या शर्करा खाना ४. चुल्लु भर-भर कर शीतल जल पीना	
		(पद्य-४८)
आम व मन्दाग्नि	वेसवार (कुछ विशेष मसालों का मिश्रण)	
आमजन्य रोग	शुक्त (सिरका)	**(पद्य-५०)**

——

परिशिष्ट-२.

अजीर्णशमन-वर्गः

(भावमिश्र-रचित 'गुणरत्नमाला' के अन्तर्गत २१वां वर्ग)

'अजीर्णामृतमञ्जरी' में जिस प्रकार द्रव्यविशेष से हुए अजीर्ण के शमन के लिए किसी विशिष्ट द्रव्य के सेवन का विधान किया है, इसी प्रकार का विधान १६वीं शती के महान् आयुर्वेदाचार्य भावमिश्र ने अपनी **'गुणरत्नमाला'** में प्रस्तुत किया है। ऐसा माना जाता है कि गुणरत्नमाला की रचना भावमिश्र ने अपने सुविख्यात ग्रन्थ **'भावप्रकाश'** से पहले की थी। भावप्रकाश एक संहितात्मक ग्रन्थ है, उसी का एक भाग **'भावप्रकाश-निघण्टु'** है।

विद्वानों का विचार है कि 'गुणरत्नमाला' का किञ्चित् परिष्कृत व परिवर्तित रूप ही 'भावप्रकाश-निघण्टु' है। गुणरत्नमाला का **'अजीर्णशमन वर्ग'** भावप्रकाश-निघण्टु में उपलब्ध नहीं है। भावमिश्र ने अजीर्णशमन-विषयक प्राचीन सामग्री का संकलन करते हुए यह वर्ग प्रस्तुत किया है। इसके अवलोकन से प्रतीत होता है कि इसकी आधारभूत पुस्तिका अजीर्णामृतमञ्जरी ही है; क्योंकि इसमें बहुत से पद्य व वाक्य इसी पुस्तिका से लिए गए हैं। जहां वाक्य-विन्यास व छन्द में अन्तर है, वहां भी विषयवस्तु अजीर्णामृतमञ्जरी से मिलती-जुलती है। 'गुणरत्नमाला' के एकमात्र प्रकाशित संस्करण[१] में अजीर्णशमन वर्ग के पद्यों में अनेक पाठदोष हैं, जैसे पञ्चम पद्य में 'चिपिट' के स्थान पर 'विटप' पाठ छपा है तथा इसी के अनुसार अनुवादकों द्वारा अर्थ कर दिया गया है, जो कि वहां अप्रासंगिक है।

---

१. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के हस्तलेखागार 'सरस्वती भवन पुस्तकालय' में उपलब्ध एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर डा. कैलाशपति पाण्डेय एवं डा. अनुग्रहनारायण सिंह ने 'गुणरत्नमाला' का सम्पादन व हिन्दीभाषानुवाद किया है। यह चौखम्बा संस्कृत भवन वाराणसी से २००६ ई. में छपी है।

हमने गुणरत्नमाला में उपलब्ध 'अजीर्णशमन वर्ग' के इन पद्यों का शोधन अजीर्णामृतमञ्जरी की सामग्री के आधार पर किया है। 'अजीर्णामृत-मञ्जरी' व 'अजीर्णशमन वर्ग' की विषयवस्तु के एक जैसा होने से इसके आधार पर अजीर्णामृतमञ्जरी के भी कतिपय स्थलों का शोधन सम्भव हो सका है। यहाँ 'अजीर्णशमन वर्ग' के श्लोक अर्थ सहित प्रस्तुत हैं-

अलं पनसपाकाय फलं कदलसम्भवम्।
कदलस्य विपाकाय बुधैरभिहितं घृतम्।।१।।

पनस (कटहल) के पाचन के लिए कदलीफल (केला) उपयोगी होता है। कदलीफल के पाचन के लिए वैद्यों ने घी को उपयोगी बताया है।

नालिकेरफलतालबीजयोः
पाचनं सपदि तण्डुलं विदुः।
क्षीरमाशु सहकारपाचनं
चारमज्जनि शिवाफलं वरम्।।२।।

नारियल की गिरि तथा तालबीज के अजीर्ण में चावल (भात) का सेवन उपयोगी होता है। दुग्धपान से आम्रफल का अजीर्ण शीघ्र ही दूर हो जाता है। चिरौंजी की गिरि के अजीर्ण में शिवाफल अर्थात् हरीतकी/हरड़ बहुत उत्तम व उपयोगी होती है।

मधूकमालूरनृपादनानां
परूषखर्जूरकपित्थकानाम्।
पाकाय देयं पिचुमन्दबीजं
घृतेऽपि तक्रेऽपि वदन्ति पथ्यम्।।३।।

मधूक (महुआ), मालूर (बिल्वफल), नृपादन (खिरनी), परूष (फालसा), खजूर एवं कपित्थ (कैंथ) से होने वाले अजीर्ण में नीम के बीज (निंबोली) का सेवन उपयोगी होता है। निंबोली का चूर्ण या क्वाथ बना कर सेवन किया जा सकता है। घृत व तक्र के अजीर्ण में भी निम्बबीज (निंबोली)

को ही वैद्यजन उपयोगी पथ्य बतलाते हैं।

खर्जूरशृंगाटकयोः प्रशस्तं
विश्वौषधं तत्र च भद्रमुस्तम्।
यज्ञांगबोधिद्रुवटेषु शीतं
प्लक्षे तथा वार्युषितं प्रणीतम्।।४।।

खजूर व सिंघाड़े के अजीर्ण में सौंठ प्रशस्त मानी जाती है। इन्हीं के अजीर्ण में भद्रमुस्त (नागरमोथा) भी उपयोगी होता है। यज्ञांग (गूलर), बोधिद्रु (पीपल), वट एवं प्लक्ष (पिलखन) के फल से हुए अजीर्ण में शीतल जल उपयोगी होता है।

तण्डुलेषु पयसः पयो हितं
दीप्यकस्तु चिपिटे कणायुतः।
षष्टिका दधिजलेन जीर्यते
कर्कटी च सुमनान्नपाचनी।।५।।

तण्डुल (ओदन) के अजीर्ण में क्षीरमिश्रित जल हितकर होता है। पिप्पली सहित दीप्यक (चित्रक) चिपिट (चिवड़ा/पोहा) के अजीर्ण को दूर कर देता है। षष्टिका (सांठी चावल) दधिजल (जलमिश्रित दही) से पच जाते हैं। ककड़ी गेंहू से बने रोटी आदि भोज्य के अजीर्ण को दूर कर देती है।

गोधूम-माष-हरिमन्थ-सतीन-मुद्ग-
पाको भवेज्झटिति मातुलपुत्रकेण।
खण्डं च खण्डयति सामभवं ह्यजीर्णं
तैलं तिलस्य विदधाति कुलत्थपाकम्।।६।।

गेंहू, उड़द, हरिमन्थ (चना), सतीन (मटर) एवं मुद्ग का पाचन शीघ्र ही मातुलपुत्रक (..........) के द्वारा हो जाता है। साम (आंव सहित) अजीर्ण को खाँड नष्ट कर देती है। तिल का तेल कुलथी के अजीर्ण को दूर कर देता है।

कंगूश्यामाकनीवारा: कुलत्थाश्चाविलम्बितम्।
दध्नो जलेन जीर्यन्ति वैदला: काञ्जिकेन तु।।७।।

कंगू (कंगुनी), श्यामाक (मुनिधान्य-विशेष/सांवा), नीवार, (तीनी-पसार का चावल) तथा कुलथी का पाचन दही के जल अर्थात् मस्तु से शीघ्र ही हो जाता है। सभी दालों का अजीर्ण काञ्जी पीने से दूर हो जाता है।

पिष्टान्नं शीतलं वारि कृशरां सैन्धवं पचेत्।
माषेण्डरीं निम्बमूलं मुद्गयूषस्तु पायसम्।।८।।

आटे से बने भोज्य पदार्थों के अजीर्ण को शीतल जल दूर कर देता है। सैन्धव लवण खिचड़ी को पचा देता है। निम्बमूल (नीम की जड़) का काढ़ा) माषेण्डरी अर्थात् माषवटिका (उड़द की बड़ी) को पचा देता है। मुद्गयूष पायस (खीर) को पचा देता है।

वटो वेशवाराल्लवंगेन फेणी
शमं पर्पट: शिग्रुबीजेन याति।
कणामूलतो लड्डुकापूपसट्टा-
विपाको भवेच्छष्कुलीमण्डयोश्च।।९।।

उड़द या मूंग आदि के बड़े वेसवार (मसालों) से, फेनी (खाजा) लौंग से व पापड़ शिग्रुबीज से पच जाते हैं। कणामूल (पिप्पलीमूल) से लड्डू, अपूप (पुआ) व सट्ट (दही से बना भक्ष्यविशेष) आदि का पाचन हो जाता है। पिप्पलीमूल से ही शष्कुली (पूरी) व माँड भी पच जाते हैं।

किमत्र चित्रं बहुमांसमत्स्य-
भोजी सुखी स्यात् परिपीय शुक्तम्।
अत्यद्भुतं केवलवह्निपक्व-
मांसेन मत्स्य: परिपाकमेति।।१०।।

मांस सहित मछली खाने वाला व्यक्ति शुक्त (सिरका) पीकर सुखी हो जाता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। भाव यह है कि मांस-मछली को सिरका आसानी से पचा देता है। यह भी आश्चर्य की बात है कि केवल आग पर पकाए (भुने हुए) मांस को खाने से उससे पहले खाई मछलियां पच जाती हैं।

मीने चूतफलं पथ्यं तद्बीजं पिशिते हितम्।
कूर्ममांसं यवक्षाराद्विपाकं याति सत्वरम्।।११।।

मत्स्यभक्षण-जन्य अजीर्ण में आम का फल पथ्य होता है। मांसभक्षण-जन्य अजीर्ण में आम की गुठली की गिरि का सेवन हितकर होता है। कूर्म (कछुए) का मांस यवक्षार (जवाखार) से शीघ्र ही पच जाता है।

कपोतपारावतनीलकण्ठ-
कपिञ्जलानां पिशितानि जग्ध्वा।
काशस्य मूलं परिपीय पिष्टं
सुखी भवेन्ना बहुशो हि दृष्टम्।।१२।।

कबूतर, पारावत (परेवा), नीलकण्ठ व कपिञ्जल (तीतर) का मांस जल में पिसे काँस के मूल को पीने से शीघ्र ही पच जाता है। यह बहुत बार देखा गया है।

शाकानि सर्वाण्यपि यान्ति पाकं
(पीतेन) सद्यस्त्रिफलाजलेन।
चञ्चूकसिद्धार्थकवास्तुकानां
गायत्रिसारक्वथितेन पाकः।।१३।।

सभी प्रकार के शाक शीघ्र ही त्रिफलाजल (त्रिफला के शीत कषाय) के सेवन से पच जाते हैं। चञ्चूक (पत्रशाकविशेष/चेउना शाक), सिद्धार्थक (श्वेत सरसों) एवं वास्तुक (बथुआ) के शाक का पाचन गायत्रीसार (खदिरसार/कत्था के क्वाथ) से हो जाता है।

पालंकिकाकेमुककारवेल्ली
वार्ताकवंशांकुरमूलकानाम्।
उपोदिकालाबुपटोलकानां
सिद्धार्थको मेघरवस्य पक्ता।।१४।।

पालंकिका (पालक), केमुक/केउँआ/कन्दविशेष (COSTUS), कारवेल्ली (करेला), वार्ताक (बैंगन), वंशांकुर (बांस के अंकुर), मूली, उपोदिका (पोई), अलाबु (घीया), पटोल (परवल) व मेघरव (चौलाई), इन सबको सिद्धार्थक (श्वेत सरसों) पचा देती है। श्वेत सरसों को पीस कर थोड़े लवण के साथ सेवन करने से इनका पाचन होता है।

पटोलवंशांकुरकारवेल्ली-
फलान्यलाबूनि बहूनि जग्ध्वा।
क्षारोदकं ब्रह्मतरोर्निपीय
भोक्तुं पुनर्वाञ्छति तावदेव।।१५।।

परवल, वंशांकुर (बांस की कोंपल), कारवेल्ली (करेला) व घीया के शाक को अधिक मात्रा में खाकर भी यदि कोई ब्रह्मतरु (पलाश/ढाक वृक्ष) के क्षार से मिश्रित जल को पी ले, तो पुनः उतना ही खाने की इच्छा हो जाती है।

विपच्यते शूरणकं गुडेन
तथालुकं तण्डुलजोदकेन।
पिण्डालुकं जीर्यति कोरदूषात्
कशेरुपाकः खलु नागरेण।।१६।।

सूरणकन्द (जिमिकन्द) गुड़ से शीघ्र ही पच जाता है। तण्डुलजल से आलू का पाचन हो जाता है। पिण्डालु (अरुई) का अजीर्ण कोद्रव (कोदो नामक) तृणधान्य के सेवन से नष्ट हो जाता है। नागर अर्थात् सौंठ के सेवन से कसेरु का पाचन हो जाता है।

लवणं तण्डुलतोयात् सर्पिर्जम्बीरकाद्यम्लात्।
मरिचादपि तत्पाकं शीघ्रं यातेव कांजिकात्तैलम्।।१७।।

अधिक मात्रा में लवण सेवन करने से हुए विकार को तण्डुलजल शान्त कर देता है। जम्बीर आदि अम्ल रस वाले द्रव्य से घृत का पाचन हो जाता है। काली मिर्च के सेवन से भी घृत का पाचन हो जाता है। कांजी के सेवन से तेल का पाचन हो जाता है।

क्षीरं जीर्यति तक्रेण तद् गव्यं कोष्णमण्डकात्।
माहिषं मणिमन्थेन शंखचूर्णेन तद्दधि।।१८।।

दूध का अजीर्ण तक्र-सेवन से नष्ट हो जाता है। गव्य क्षीर (गाय का दूध) उष्ण मण्ड (गर्म मांड) पीने से पच जाता है। भैंस का दूध मणिमन्थ अर्थात् सैन्धव लवण के प्रयोग से पच जाता है। भैंस का दही शंखचूर्ण (शंखभस्म) के सेवन से पच जाता है।

रसाला जीर्यति व्योषात् खण्डं नागरभक्षणात्।
सिता नागरमुस्तेन तथेक्षुश्चार्द्रकाद् रसात्।।१९।।

रसाला (शिखरन) का अजीर्ण व्योष (त्रिकटु) से दूर हो जाता है। खण्ड (खाँड) का अजीर्ण सोंठ के सेवन से नष्ट हो जाता है। सिता (मिश्री) का अजीर्ण नागरमोथा से दूर हो जाता है। ईख के रस का अजीर्ण अदरक के रस से नष्ट हो जाता है।

जरामिरा गैरिकचन्दनाभ्या-
मभ्येति शीघ्रं मुनिभिः प्रणीतम्।
उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्ण-
मम्लेन च क्षारगुणो गुणाय।।२०।।

इरा (मदिरा) का अजीर्ण अर्थात् अधिक मद्यपानजन्य विकार सोनागेरू और चन्दन के प्रयोग से शीघ्र दूर हो जाता है, यह मुनियों द्वारा

प्रतिपादित तथ्य है।

शीतल पदार्थ के खाने से हुए अजीर्ण को उष्ण पदार्थ से तथा उष्ण पदार्थ के खाने से हुए अजीर्ण को शीतल पदार्थ के सेवन से दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार क्षारयुक्त या खारे पदार्थ से हुए अजीर्ण को अम्ल पदार्थ से व अम्ल भोज्य के अजीर्ण को क्षार रस वाले भोज्य के सेवन से नष्ट किया जाता है।

तप्तं तप्तं हेम वा तारमग्नौ
तोये क्षिप्तं सप्तकृत्वस्तदम्भः।
पीत्वाजीर्णं तोयजातं निहन्यात्
तत्र क्षौद्रं भद्रमुस्तं विशेषात्।।२१।।

तीव्र रूप से तपाये हुए सोने या चाँदी को जिस पानी में सात बार बुझाया गया हो, वह पानी दीर्घकाल से हुए पानी के अजीर्ण को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। जल के अजीर्ण का शमन करने में शहद व नागरमोथा भी विशेष रूप से गुणकारी होता है।

।।इति गुणरत्नमालायाम् अजीर्णशमनवर्गः एकविंशतितमः।।

परिशिष्ट-३.

हस्तलिखितग्रन्थ-परिचय

अजीर्णामृतमञ्जरी/अमृतमञ्जरी की हस्तलिखित प्रतियों का विवरण

अजीर्णामृतमञ्जरी वैद्य-समाज में प्रचलित एक अल्पकलेवर व रोचक रचना है। अतः इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भारतवर्ष में बहुत संख्या में उपलब्ध हैं। हस्तलेखागारों के सूचीपत्रों में उपलब्ध जानकारी के आधार पर सम्पर्क कर हमने इसकी २५ हस्तलिखित प्रतियाँ संग्रहीत की हैं। ये सभी देवनागरी लिपि में हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार से है-

१. लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात) से प्राप्त चार प्रतिलिपियाँ-
   १. अजीर्णमञ्जरी (अजीर्णामृतमञ्जरी) संस्कृतटीकासहित, पत्र-८, नं.- ५०१७, **प्रतिलिपि-काल- सं० १९१९, आश्विन शुक्ल द्वादशी, शनिवार**;
   २. अजीर्णमञ्जरी, पत्र-३, नं.- ५७३५;
   ३. अजीर्णमञ्जरी (गुजराती टिप्पणी सहित), पत्र-४, नं.- ३११९८;
   ४. अजीर्णामृतमञ्जरी, पत्र-१, नं.- २२७८, **प्रतिलिपि-काल- सं० १७२०, पौष शुदि ९, सोमवार**;

२. श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानमन्दिर, श्रीमहावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा (गांधीनगर) गुजरात से प्राप्त दो प्रतिलिपियाँ-
   १. अजीर्णरसमञ्जरी (गुजराती टिप्पणी सहित), पत्र-५, नं.- ५५२२८;
   २. अजीर्णमञ्जरी (गुजराती टिप्पणी सहित), पत्र-९, नं.- ७७८३, **प्रतिलिपि-काल- सं० १९०२, पौष मास**;

३. प्राच्यविद्या मन्दिर, सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय, बडौदा (गुजरात) से प्राप्त छह प्रतिलिपियाँ-
   १. अमृतमञ्जरी/अजीर्णमञ्जरी, पत्र-३, नं.- १२५५४;
   २. अजीर्णमञ्जरी, पत्र-६, नं.- ५७४३;

३. अमृतमञ्जरी, पत्र-५, नं.- ३५४६;

४. अजीर्णमञ्जरी/अमृतमञ्जरी, पत्र-१०, नं.- ११४२, **प्रतिलिपि-काल- सं० १९३८, माह सुद २;**

५. अमृतमञ्जरी, पत्र-६, नं.- १५६६, **प्रतिलिपि-काल- सं० १९५२, मार्गशीर्ष शुदि १०, भौमवार;**

६. अजीर्णमञ्जरी (मारवाड़ी टिप्पणी सहित), पत्र-७, नं.- १६३५;

४. डूंगरजीयति कागज का हस्तलिखित ग्रन्थभण्डार, जैसलमेर दुर्ग (राजस्थान) से प्राप्त एक प्रतिलिपि-

१. अमृतमञ्जरी, पत्र-३, नं.- ११९५;

५. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राजस्थान) से प्राप्त दो प्रतिलिपियाँ-

१. अमृतमञ्जरी/अजीर्णमञ्जरी, पत्र-११, नं.- ५८६०;

२. अजीर्णमञ्जरी (हिन्दी भाषान्तर सहित), पत्र-१०, नं.- ७१९, **प्रतिलिपि-काल- सं० १९०३, मार्गशीर्ष बदि ७;**

६. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर (राजस्थान) से प्राप्त दो प्रतिलिपियाँ-

१. अजीर्णमञ्जरी **(दोहा रूप हिन्दी भाषान्तर सहित)**, पत्र-७, नं.- १४५९;

२. अजीर्णमञ्जरी **(हिन्दीभाषान्तर सहित)**, पत्र-१०, नं.- ३३७६;

७. रघुनाथमन्दिर हस्तलेखागार, जम्मू से प्राप्त एक प्रतिलिपि-

१. अमृतमञ्जरी, पत्र-७, नं.- ९३९६;

८. नागपुर विश्वविद्यालय के प्रस्तकालय से प्राप्त दो प्रतिलिपियाँ-

१. अजीर्णमञ्जरी, पत्र-३, नं.- १०८४०;

२. अजीर्णमञ्जरी, पत्र-३, नं.- १०५२७;

९. वैदिक संशोधन मण्डल, पूना से प्राप्त एक प्रतिलिपि-

१. अजीर्णमञ्जरी, पत्र-४, नं.- ४७९९;

१०. अडियार लायब्रेरी, थियोसोफिकल सोसायटी, अडियार (चेन्नई) से प्राप्त एक प्रतिलिपि-

१. अजीर्णमञ्जरी, पत्र-५, नं.- ६२७०६;

११. श्रीयादवराव, कन्दकृत्ति (निजामाबाद, आन्ध्र.) से प्राप्त १ प्रतिलिपि।

११. राष्ट्रियसंस्कृत-संस्थान गंगानाथझा-परिसर, प्रयाग के हस्तलेखागार से प्राप्त एक प्रतिलिपि-

१. अजीर्णमञ्जरी, पत्र-६, नं.- १९९३/३, **प्रतिलिपि-काल- सं० १९२४, आश्विन कृष्णा अष्टमी**;

अजीर्णामृतमञ्जरी के उपलब्ध इन सभी हस्तलेखों में प्राचीनतम प्रति लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात) से प्राप्त हुई है, जो इस संस्था से प्राप्त हस्तलेखों के विवरण में चौथे स्थान पर प्रदर्शित है। इसका प्रतिलिपि-काल- **सं०- १७२०, पौष शुदि ९, सोमवार** है। इसमें '**यो रावणं रणमुखे**' इस मंगलाचरण पद्य से लेकर '**पद्यैर्मुनीनामनवद्य-पद्या**' इस ग्रन्थसमाप्तिसूचक पद्य तक कुल ५२ पद्य हैं। अन्तिम वाक्य इस प्रकार है- **इति श्रीअजीर्णरोगशमने अजीर्णामृतमञ्जरी समाप्ता। श्रेयसे।।** इसके अनन्तर पूर्वनिर्दिष्ट लिपिकाल उल्लिखित है। इस प्रकार बड़े आकार के एक पत्र अर्थात् दो पृष्ठों में यह हस्तलेख पूर्ण हुआ है। इसके दोनों ओर हाशिये पर टिप्पण रूप में कुछ लेखन किया हुआ है। संगणक द्वारा स्कैन कर इसे छोटे पत्र में व्यवस्थित कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

यह प्रतिलिपि अपेक्षाकृत शुद्ध है अर्थात् इसमें अन्यों की अपेक्षा अशुद्धियाँ कम हैं व लेखन भी स्पष्ट है। अतः इसी प्राचीन प्रतिलिपि को हमने सम्पादन में मुख्य आधारभूत पुस्तिका के रूप में स्वीकार किया है।

इसके अतिरिक्त डूंगरजीयति ग्रन्थभण्डार जैसलमेर दुर्ग से उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिलिपि भी प्राचीन व अपेक्षाकृत शुद्ध है। यद्यपि इसमें प्रतिलिपि-काल का उल्लेख नहीं है, तथापि कागज की स्थिति व लेखन की शुद्धता से यह प्राचीन प्रतीत होती है। इस प्रतिलिपि को भी यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

अमृतमञ्जरी/अजीर्णमञ्जरी की एक तीसरी हस्तलिपि की प्रतिकृति भी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। यह प्राच्यविद्या-मन्दिर बड़ौदा से प्राप्त हुई है। संस्कृत मूलपाठ वाली इस प्रतिलिपि में तीन पत्र हैं। इसकी संख्या- १२५५४ है। इसमें प्रतिलिपि-काल का उल्लेख नहीं है।

परिशिष्ट-४.

ओम्

अजीर्णामृतमञ्जरी

(मूलपाठः)

यो रावणं रणमुखे भुवनैकभारं
हत्वा चकार जगतः परमोपकारम्।
यं ब्रह्म चाभिदधिरे परतोऽपि पारं
तं नौमि मैथिलसुताहृदयैकहारम्।।१।।

नालीकेरफलेऽथ तण्डुलजलं क्षीरं रसाले हितं
जम्बीरोत्थरसो घृते समुचितस्सर्पिस्तु मोचाफले।
गोधूमेषु च कर्कटी हिततमा मांसात्यये काञ्जिकं
नारङ्गे गुडभक्षणं च विहितं पिण्डालुके कोद्रवः।।२।।

पिष्टान्ने सलिलं प्रियालफलजे पथ्या हिता माषजे
खण्डं क्षीरभवे च तक्रमुचितं कोष्णाम्बु कोलाम्रजे।
मात्स्ये चूतफलं त्वजीर्णशमनं मध्वम्बु पानात्यये
तैलं पुष्करजे कटु प्रशमनं शेषं तु बुद्ध्या जयेत्।।३।।

पनसे कदलं कदले च घृतं
घृतपाकविधावपि जम्भरसः।
तदुपद्रवशान्तिकरं लवणं
लवणेऽपि च तण्डुलवारि परम्।।४।।

नारिकेलफलतालबीजयोः
पाचनं य इह तण्डुलं विदुः।
ते वदन्ति मुनयोऽथ तण्डुलान्

क्षीरवारि परिपाचयेदिति ।।५ ।।

दाडिमामलकतालतिन्दुकी-
बीजपूर-लवलीफलानि च ।
बाकुलेन च फलेन पाचयेत्
पाकमेति बकुलं स्वमूलतः ।।६ ।।

मधूक-मालूर-नृपादनानां
परूष-खर्जूर-कपित्थकानाम् ।
पाकाय पेयं पिचुमन्दबीजं
सिद्धार्थको हन्ति च बीजपूरम् ।।७ ।।

मृणाल-खर्जूरक-हारहूरा-
कसेरु-शृङ्गाटक-शर्कराणाम् ।
यथा विपाकाय च भद्रमुस्तं
तथा रसोने च पयः प्रशस्तम् ।।८ ।।

आम्रातकोदुम्बरपिप्पलानां
फलानि च प्लक्षवटादिकानाम् ।
स्युः शर्मणे पर्युषितोदकेन
सौवर्चलेनाम्रफलस्य पाकः ।।९ ।।

सौवीरं फलमुष्णवारि हन्यात्
प्राचीनामलकं च राजिकैका ।
खर्जूरं सपरूषकं प्रियालं
क्षीरी तालफलं पचेन्मरीचम् ।।१० ।।

नागरं हरति बिल्वजाम्बवं
शर्करा पचति तिन्दुकीफलम् ।
जीरकं जरयतीह बाकुलं
पाचयेन्मधुरिका कपित्थजम् ।।११ ।।

पनसकामलकीफलपक्तये
भजत सर्जतरोरपि बीजकम्।
सकलमप्युदितानुदितं फलं
प्रपचति प्रसृतं कटुतिन्दुकम्।।१२।।

आर्द्राम्रबीजं पनसस्य पक्त्यै
रसालपक्त्यै घनरावमूलम्।
अपूपपक्त्यै सजला यवानी
सा कैश्चिदुक्ता पृथुकस्य पक्त्यै।।१३।।

पालङ्किकाकेमुककारवल्ली-
वार्ताकवंशाङ्कुरमूलकानाम्।
उपोदिकालाबु-पटोलकानां
सिद्धार्थको मेघरवस्य पक्ता।।१४।।

पटोलवंशाङ्कुरकारवल्ली-
फलान्यलाबूनि बहूनि जग्ध्वा।
क्षारोदकं ब्रह्मतरोर्निपीय
भोक्तुं पुनर्वाञ्छति तावदेव।।१५।।

वास्तूकसिद्धार्थकचुञ्चुशाकं
प्रयाति सद्यः खदिरेण पाकम्।
यथा गुडः सूरणनागरङ्गौ
तथालुकं तण्डुलवारि हन्ति।।१६।।

पत्राणि पुष्पाणि फलानि यानि
मूलानि पूर्वं न मयोदितानि।
शाकानि सर्वाण्युपयान्ति पाकं
क्षारेण तान्येव तिलोद्भवेन।।१७।।

पिशितपनसयोः स्यादाम्रबीजेन पाकः
कृशरमहिषयोषित्क्षीरयोः सैन्धवेन।
चिपिटपरिणतिः स्यात् पिप्पलीदीप्यकाभ्या-
मपहरति तुषाम्भो द्वैदलानामजीर्णम्।।१८।।

काञ्जिकं हि लवणान्वितं शृतं
पिष्टपाचनकमादिशन्ति हि।
सर्पिरेव यवशूकसम्भवं
मांसपाचनमथोष्णवारिणा ।।१९।।

श्यामाकनीवारतिलातसीनां
निष्पावकङ्गूयवषष्टिकानाम्।
मन्थेन पाकोऽथ कुलत्थचिञ्चा-
पाकाय पेयं तिलतैलमेकम्।।२०।।

गोधूममाषौ हरिमन्थमुद्गौ
यवान् सतीनान् कितवो निहन्ति।
यन्मातुलुङ्गीफलमेति पाकं
क्षणेन सोऽयं लवणानुभावः।।२१।।

कर्पूर-पूगीफल-नागवल्ली-
काश्मीर-जातीफल-जातिकोशम्।
कस्तूरिका-सिल्हक-नारिकेल-
जलं पचत्याशु समुद्रफेनः।।२२।।

निम्बूफलेनाप्यथवोषणेन
तक्रेण वा सर्पिरुपैति पाकम् ।
तैलानि सर्वाणि तिलादिजानि
प्रयान्ति पाकं किल काञ्जिकेन।।२३।

श्रृङ्गबेररस एव केवलः
क्षारतोयमथवा पलाशजम्।
ऐक्षवं रसमुदस्यति क्षणा-
दग्निवेशमुनिनेदमीरितम्।।२४।।

माहिषे पयसि सिन्धुजं यथा
सैन्धवं कृसरपक्तये तथा।
काञ्जिकं च विदलान्नपक्तये
शीलयन्ति जठराग्निशक्तये।।२५।।

किमत्र चित्रं बहुमांसमत्स्य-
भोजी सुखी स्यात् परिपीय शुक्तम्।
इत्यद्भुतं केवलवह्निपक्व-
मांसेन मत्स्यः परिपाकमेति।।२६।।

कपोत-पारावत-नीलकण्ठ-
कपिञ्जलानां पिशितानि जग्ध्वा।
काशस्य मूलं परिपीय पिष्टं
जनः सुखी स्याद् बहुशो हि दृष्टम्।।२७।।

कोष्णेन मण्डेन गवां पयस्तु
व्योषै रसाला परिपाकमेति।
शङ्खस्य चूर्णेन हयारिनारी-
पयोदधि क्षिप्रमुपैति पाकम्।।२८।।

शुण्ठी सतीनस्य च नागरङ्ग-
जम्बीरयोः कोद्रवको निहन्ता।
जरामिरा चन्दनगैरिकाभ्या-
मभ्येति तज्जा अपि ये विकाराः।।२९।।

वटा वेसवारैर्लवङ्गेन फेनी
शमं पर्पटः शिग्रुबीजेन याति ।
कणामूलतो लड्डुकापूपसट्टादि-
पाको भवेच्छष्कुलीमण्डयोश्च ।।३०।।

श्वाविद्गोधागण्डकाश्चित्रतैला-
द्यावक्षारात् कोलकूर्मादयोऽपि ।
मौद्गाद्यूषात् पायसो याति पाकं
सामुद्रादप्यारनालं सुखाय ।।३१।।

तप्तं तप्तं हेम वा तारमग्नौ
वारं वारं क्षिप्तमम्भस्यथैतत् ।
पीत्वा तोयं दीर्घकालोपपन्न-
मम्भोऽजीर्णं शीघ्रमेवं जहाति ।।३२।।

कूष्माण्डकं च त्रपुसीफलं च
कर्कारुचीनातकयोः फलं च ।
निहन्ति सद्यो हि करञ्जबीज-
रसं तथैवारणिमूलमेकम् ।।३३।।

स्त्रीकेशाम्बु निपीतमाशु हन्यात्
प्राचीनामलकं सपाणिमर्दम् ।
शुण्ठीधान्यकवारि हन्ति सद्य-
स्तांस्तानामविलासजान् विकारान् ।।३४।।

मृगस्य मांसं श्रमजेऽनुकूलं
व्यवायजाते शयनं प्रवाते ।
क्षीरोषणासैन्धवसाधितं तु
छागाण्डमुक्तं तदिहैव युक्तम् ।।३५।।

स्नेहाजीर्णे रोगिणां मुद्गचूर्णं
हन्यान्मुस्तो हन्ति वैरेचकानाम्।
माषेण्डर्या निम्बमूलेन पाक-
श्चिञ्चा मुञ्चत्यम्लतां चूर्णयोगात्।।३६।।

कोष्णाम्बु पिष्टान्नभवे हि देयं
प्रियालमज्जास्विदमेव पेयम्।
मात्स्यं तु माकन्दफलं निहन्ति
गोधूमकं कर्कटिका निहन्ति।।३७।।

सद्यः प्रियालं विनिहन्ति पथ्या
मध्वम्ब्वजीर्णं विनिहन्ति पथ्या।
पिण्डालुकः कोद्रवपाककारी
खण्डस्तु माषान्नविकारहारी।।३८।।

मुखं दह्यते चूर्णकेन प्रमादा-
द्यदा नागवल्लीदलस्थेन पुंसः।
सितातैलसौवीरकैस्तन्निवृत्तिः
पृथक् तस्य गण्डूष एवोपदिष्टः।।३९।।

उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्ण-
मम्लेन च क्षारगुणो गुणाढ्यः।
स्नेहेन तीक्ष्णं वमनातियोगे
सिता हिता स्यादिति काशिराजः।।४०।।

वमनवस्तिविरेचनभेषजं
यदिह कर्म निजं कुरुतेऽखिलम्।
तदिह विश्वयवासकसाधितं
पिबत पाचनकं रजनीमुखे।।४१।।

शीतोदकं नस्यजरोगहारि
नारीपयश्चाञ्जनरुग्विदारि।
रालोदकं धूमगदेषु शस्तं
धात्रीफलं चातिविरेचनार्ते।।४२।।

श्रवणपूरणजे तिलतैलजं
श्रवणपूरणमेव सुखं विदुः।
कवलजेषु गदेष्वथ कारयेत्
कवलमार्द्रयुतं द्रवजं पुनः।।४३।।

मदयति न हि मद्यं जातु चेत् पीतमद्यः
पिबति घृतसमेतां शर्करामेव सद्यः।
अथ घनमधुकैलाकुष्ठदार्वेलवालु-
प्रकटितकबलास्ये मद्यगन्धोऽपि न स्यात्।।४४।।

एलामृताम्भोधरकट्फलानां
चूर्णं यथापूर्वविवर्द्धितानाम्।
विमर्द्य वक्त्रे धृतमाशु हन्ति
सुरारसोनादिजमुग्रगन्धम्।।४५।।

कूष्माण्डकस्य स्वरसो गुडेन
पीतो मदं कोद्रवजं निहन्ति।
पयो निपीतं सितया समेत-
मुन्मत्त-मत्तत्वमपाकरोति।।४६।।

घ्रात्वा स्वकक्षां विपिनोपलं वा
सम्प्राश्य किञ्चिल्लवणं नरो वा।
शीताम्बु पीत्वा चुलुकेन वापि
प्रसह्य पूगीमदमुज्जहाति।।४७।।

सैन्धव-त्रिकटु-धान्यजीरकै-
र्दाडिमीरजनिरामठान्वितैः ।
पाचनोऽथ जठराग्निदीपनो
वेसवार उदितो मनीषिभिः ।।४८ ।।

गुडमधुकाञ्जिकतक्रविभागाः
स्युर्द्विगुणास्तु यथोत्तरमेते ।
त्रीणि दिनानि च धान्यसमूहे
स्थापितमेतदुशन्ति हि शुक्तम् ।।४९ ।।

शुक्तमुक्तमपि तद् बहुभेदं
हन्ति सर्वमिदमामजखेदम् ।
यन्मया समुदितं मधुशुक्तं
तद्भिषग्भिरपि पाचनमुक्तम् ।।५० ।।

तत्तन्महाजीर्णविषापनेत्री
जीयाच्चिरायामृतमञ्जरीयम् ।
सत्षट्पदानन्दमयीमसन्तो
घुणा इवैनामवधीरयन्तु ।।५१ ।।

पद्यैर्मुनीनामनवद्यपद्या
श्रीकाशिनाथेन शिशोः सुखाय ।
स्फुटीकृताजीर्णविषापहन्त्री
जीयाच्चिरायामृतमञ्जरीयम् ।।५२ ।।

।। इति श्रीकाशिनाथकृता अजीर्णामृतमञ्जरी समाप्ता ।।

परिशिष्ट-५.

अजीर्णामृतमञ्जरी की हस्तलिखित प्रतियों के मुख्य पाठान्तर व अतिरिक्त पाठ

अजीर्णामृतमञ्जरी के प्रस्तुत सम्पादन व पाठशोधन में वि.सं. २०१७ में लिखित, लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद (गुजरात) से प्राप्त हस्तलिखित प्रति (संख्या- २२७८) को मुख्य आधार पुस्तिका के रूप में स्वीकार किया है। इसे यहाँ **'ला.१'** रूप में संकेतित किया है। डूंगरजीयति जैसलमेर दुर्ग (राजस्थान) से प्राप्त प्रतिलिपि (संख्या- ११९५) को भी प्राचीन होने से सम्पादन में महत्त्वपूर्ण आधार पुस्तिका माना है। इसे यहाँ **'जै.'** रूप में संकेतित किया है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रतिलिपियों के पाठान्तर भी संकलित किए हैं। कुछ प्रतिलिपियों में ऐसे पाठान्तर उपलब्ध हैं, जिनसे श्लोक का स्वरूप ही भिन्न हो गया है। इसी प्रकार कुछ प्रतिलिपियों में अतिरिक्त श्लोक भी उपलब्ध हैं। उन सबका संकलन यहाँ किया जा रहा है।

हस्तलिखित प्रतिलिपियों के अवलोकन व परस्पर मिलान से विदित हुआ कि अजीर्णामृतमञ्जरी की दो धाराएं हैं। प्रथम धारा की प्रतिलिपियाँ **ला.१** व **जै.** से सम्बद्ध हैं। इनमें कुल ५२ श्लोक मिलते हैं। दूसरी धारा की प्रतिलिपियाँ श्रीकैलाससागर सूरि ज्ञानभण्डार, श्रीमहावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा (गांधीनगर, गुजरात) से प्राप्त प्रतिलिपि संख्या-७७८३ से सम्बद्ध हैं। इस धारा की प्रतिलिपियों में कई श्लोकों का स्वरूप भिन्न है तथा कुछ श्लोक अतिरिक्त रूप में भी उपलब्ध हैं।

अजीर्णमञ्जरी के निघण्टुरत्नाकरगत संस्करण के आरम्भ में निम्न श्लोक अतिरिक्त रूप में हैं तथा मङ्गलाचरण श्लोक नहीं है-

अजीर्णप्रभवा रोगास्तदजीर्णं चतुर्विधम्।
आमं विदग्धं विष्टब्धं रसाजीर्णं चतुर्थकम्।।१।।

आमे च सद्य उद्गारो विदग्धे चोदरव्यथा।
विष्टब्धे चाङ्गभङ्गः स्याद्रसशेषेऽधिजृम्भणम्।।२।।

आमे चोष्णोदकं पेयं दग्धे चोदरस्वेदनम्।
विष्टब्धे रेचनं चैव शयनं रसशेषके।।३।।

घृताजीर्णे दिनाः पञ्च तैले द्वादशकस्तथा।
तिथिसंख्या पयस्युक्ता दध्नि वा विंशतिः स्मृता।।४।।

आमान्नं सप्तरात्रेण दधि षोडशभिस्तथा।
क्षीरं विंशतिभिर्ज्ञेयं मांसं मासेन पच्यते।।५।।

उष्णोदकं घृताजीर्णे तैलाजीर्णे च काञ्जिकम्।
गोधूमे कर्कटी श्रेष्ठा कदल्याम्रफले घृतम्।।६।।

ये श्लोक मूलतः अजीर्णामृतमञ्जरी के नहीं हैं। क्योंकि किसी भी प्राचीन हस्तलेख में उपलब्ध नहीं हैं। नवीन हस्तलिखित प्रतियों में प्रतिलिपिकारों द्वारा जोड़ दिए गए हैं।

पण्डित दत्तराम कृत भाषाटीका सहित अजीर्णामृतमञ्जरी में कहीं भी मूल रचयिता काशिनाथ का उल्लेख नहीं किया गया है। इस संस्करण में भी आरम्भ में वैद्यक ग्रन्थों से निम्न श्लोक संकलित किए गए हैं-

यतस्सर्वेषु रोगेषु अजीर्णं कारणं स्मृतम्।
ततस्तस्य निदानं च कथ्यते पूर्वसम्मतम्।।७।।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य।।८।।

(सु.सं.सू.-४६.५००)

ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न पाकं भजते नरस्य।।९।।

(सु.सं.सू.-४६.५०१)

भुक्तान्नं पाचितं नैव वह्निनोदरजेन यत्।
तस्योपरि पुनर्भुक्तमजीर्णं तं विदुर्बुधाः।।१०।।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः।।११।।

(सु.सं.सू.-४६.४९९)

अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च।
वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम्।।१२।।

अजीर्णप्रभवा रोगास्तदजीर्णं चतुर्विधम्।
आमं विदग्धं विष्टब्धं रसशेषं चतुर्थकम्।।१३।।

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोफो गण्डाक्षिकूटजः।
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्तते।।१४।। (माधव., अजीर्ण.-९)

इस प्रकार १४ श्लोक मूल अजीर्णमञ्जरी से पहले जोड़े गए। इनके साथ पण्डित दत्तराम के स्वकृत मंगलाचरण के निम्न २ पद्य और जोड़ देने से इनकी संख्या १६ हो गई है।

धन्वंतरिं धृतकरामृतपूर्णकुम्भं
पीताम्बरं सकलसिद्धसुरेन्द्रवन्द्यम्।
वन्देऽरविन्दनयनं मणिमाल्यमायु-
र्वेदप्रवर्तकमनुस्मृतिरोगनाशम्।।

राधिकारमणं नत्वा श्रीवृन्दावनचारिणम्।
दत्तरामः प्रकुरुते दिव्यार्थाजीर्णमञ्जरीम्।।

डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी की निर्मला हिन्दी-व्याख्या वाले अजीर्णमञ्जरी के चौखम्बा सुरभारती संस्करण में पण्डित दत्तराम वाले संस्करण का ही अनुसरण किया गया है। पण्डित दत्तराम का संस्करण अजीर्णमञ्जरी की दूसरी धारा वाली हस्तलिखित प्रतिलिपियों के ऊपर आधारित है। इसमें

हमारे द्वारा आधार रूप में स्वीकृत हस्तलेख से अनेक स्थानों पर भिन्नता है। भिन्नता वाले स्थल यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

प्रस्तुत संस्करण के २०वें श्लोक '**श्यामाकनीवार०**' के स्थान पर दत्तराम-संस्करण का श्लोक निम्न प्रकार से है-

श्यामाकनीवारकुलत्थषष्टी-निष्पावकङ्गूर्दधिमण्डकस्तु।
चिञ्चाकुलत्थौ तिलतैलयोगो जटाब्दनादस्यनिहन्त्यथाम्रम्।।

इस पद्य के अनन्तर दत्तराम-संस्करण में एक अतिरिक्त श्लोक भी मिलता है, जो प्रस्तुत संस्करण के आधारभूत हस्तलेख में नहीं है-

कसेरुशृंगाटमृणालमृद्वी-खर्जूरखण्डा अपि नागरेण।
पलाशभस्माम्बु तथा रजो वा रसो निहन्याद्रसमिक्षुजातम्।।

प्रस्तुत संस्करण के ४८वें श्लोक के अनन्तर दत्तराम-संस्करण व उसकी आधारभूत प्रतिलिपियों में वेशवार-विषयक एक अन्य श्लोक अतिरिक्त रूप में उपलब्ध होता है-

विश्वौषध-चपलोषण-सैन्धव-धान्याक-हिंगु-राजीभिः।
करकाजाजियुताभिर्गदितो मुनिभिस्तु वेशवारोऽयम्।।

रघुनाथ मन्दिर जम्मू के हस्तलेखागार से उपलब्ध अजीर्णमञ्जरी (संख्या-९३९६) के अन्त में-

संयोजितं चम्पकपल्लवेन जातीप्रसूनैर्मधुकान्वितैश्च।
सूर्यांशुतप्तं घृतमंगनानामभ्यंगतो हन्ति वरांगगन्धम्।।

इत्यादि कुछ श्लोक सभी हस्तलिखित प्रतियों से अलग रूप में उपलब्ध हुए हैं। वस्तुतः वे अजीर्णमञ्जरी के नहीं हैं, प्रत्युत आयुर्वेद के अन्य ग्रन्थ (गदनिग्रह, कौमारतन्त्र के नवें अध्याय के अन्त) से संकलित हैं।

परिशिष्ट-६.

पूर्व संस्करणों के शोधनीय पाठ

जैसा कि भूमिका में बताया गया है, अजीर्णामृतमञ्जरी के चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं-

१. पण्डित दत्तराम कृत भाषा-टीका सहित संस्करण।

२. डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी कृत निर्मला हिन्दी-व्याख्या सहित संस्करण।

३. निघण्टुरत्नाकर में मराठी भाषानुवाद के साथ मुद्रित संस्करण।

४. तेलगू अनुवाद के साथ मुद्रित संस्करण।

इनमें कुछ स्थलों पर पाठदोष रह गए हैं। हमने अनेक हस्तलिखित प्रतियों का अवधानपूर्वक अवलोकन कर पाठदोषों को दूर करने का प्रयास किया है।

पद्य सं.	मुद्रित अशुद्ध पाठ	संस्करण	शोधित पाठ
३.	कोष्णाम्बु कालिङ्गजे	१, २, ३	कोष्णाम्बु कोलाम्रजे
२८.	हयादिनारी०	१, २, ३	हयारिनारी०
२९.	जरासिरा गैरिक०	१	जरामिरा गैरिक०
३०.	०सट्टा, विपाकी	१, २	०सट्टाविपाको
३१.	श्वापद्गोधा०	१	श्वाविद्गोधा०
३१.	आविक्षीरात् कोल०	१, २	यावक्षारात् कोल०
३५.	क्षारोषणा०	१, २	क्षीरोषणा०
३६.	स्नुक्प्रयोगात्	१	चूर्णयोगात्
४६.	०मुत्पन्नमृत्युत्व०	१, २	०मुन्मत्तमत्तत्व०
४७.	घ्रात्वा शुकाख्यं/शुकाक्षीं	१, २	घ्रात्वा स्वकक्षां

व्याख्यादोष-

शंखस्यचूर्णेन हयारिनारीपयोदधि क्षिप्रमुपयति पाकम्

'घोड़ा आदि अर्थात् खुर वाले सभी पशुओं तथा स्त्री के दूध और दही से होने वाले अजीर्ण की शान्ति शंख भस्म से हो जाती है।'

(अजीर्णमञ्जरी, डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी कृत निर्मला व्याख्या, श्लोक-३७, पृ.-१२)

यह व्याख्या उचित नहीं है। ऐसी ही त्रुटि दत्तराम संस्करण में भी है। इसके स्थान पर उचित अर्थ इस प्रकार है- 'हयारिनारी अर्थात् भैंस का दूध व दही शंख भस्म के प्रयोग से शीघ्र पच जाता है।'

कणामूलतो लड्डुकापूपशट्टा विपाकी भवेच्छष्कुलीमण्डयोश्च।

'लड्डु, मालपुआ, शट्टक, विपाकी (कढ़ी), पूरी और माँड आदि के खाने से हुआ अजीर्ण पिप्पला मूल के चूर्ण अथवा इसके क्वाथ के सेवन से शान्त हो जाता है।'

(अजीर्णमञ्जरी, डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी कृत निर्मला व्याख्या, श्लोक-३८, पृ.-१३)

यह व्याख्या भी दोषयुक्त है। यही दोष इसके पूर्ववर्ती दत्तराम-संस्करण में भी है। यहाँ शट्टा का अर्थ शट्टक करते हुए इसी व्याख्या में आगे डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी ने लिखा है-

''शालिचूर्णे घृतं तोयं मिश्रितं शट्टकं भवेत्- (भावप्रकाश)। शालि चावल के आटा को पानी से सान कर नमक, जीरा, अजवायन डालकर घी में पकाने से शट्टक बनता है।''

वस्तुतः यहाँ 'शट्टा' का अर्थ यह नहीं है, अपितु दही खाँड व कालीमिर्च आदि से बनाया भोज्य विशेष यहाँ अभिप्रेत है। इसी प्रकार यहाँ 'विपाकी' पाठ मानते हुए कढ़ी अर्थ करना भी उचित नहीं है। कढ़ी के लिए आयुर्वेदीय ग्रन्थों में 'विपाकी' शब्द प्रचलित नहीं है। वस्तुतः यहाँ 'सट्टादिपाको' अथवा 'सट्टाविपाको' पाठ है। इसका उचित अर्थ प्रस्तुत संस्करण के ३०वें श्लोक की व्याख्या में देखें।

परिशिष्ट-७.

अजीर्णामृतमञ्जरी में प्रयुक्त छन्द

इन्द्रवज्रा-	१७, २०, ३८, ४२; (स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः)
उपेन्द्रवज्रा-	८; (उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ)
उपजातिः-	७, ९, १३, १४, १५, १६, २१, २२, २३, २६, २७, २८, २९, ३३, ३५, ३७, ४०, ४५, ४६, ४७, ५१, ५२; (अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः)
गाथा-	४९; (दोधक-तामरसयोर्वृत्तयोः संकरः- दोधकवृत्तमिदं भभभाद् गौ, अभिनवतामरसं नजजाद्यः)
तोटकम्-	४; (इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्)
द्रुतविलम्बितम्-	१२, ४३; (द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ)
भुजङ्गप्रयातम्-	३०, ३९; (भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः)
मालिनी-	१८, ४१, ४४; (ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः)
रथोद्धता-	५, ६, ११, १९, २४, २५, ४८, ५०; (रान्नराविह रथोद्धता लगौ)
वसन्ततिलका-	१; (उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः)
विश्वविराट्-	१०, ३४; (वृत्तं विश्वविराड् मसौ जगौ गः)
शार्दूलविक्रीडितम्-	२, ३ (सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्)
शालिनी-	३१, ३२, ३६; (शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः)

★ *यहाँ छन्दों के लक्षण **वृत्तरत्नाकर** से उद्धृत हैं। 'विश्वविराट्' का लक्षण **वाग्वल्लभ** से लिया है।*

परिशिष्ट-८.

अजीर्णामृतमञ्जरी

पद्यचरणानुक्रमणिका

यहाँ अजीर्णामृतमञ्जरी के पद्यों के चारों चरणों की अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका प्रस्तुत है। इसमें प्रत्येक पद्य के प्रथम चरण को गाढ अक्षरों में मुद्रित किया है।

पद्य	पद्य सं.-च.सं.
अथ घनमधुकैलाकुष्ठदार्वेलवालु-	४४.३
अपूपपक्त्यै सजला यवानी	१३.३
आम्रातकोदुम्बरपिप्पलानां	**९.१**
आर्द्राम्रबीजं पनसस्य पक्त्यै	**१३.१**
इत्यद्भुतं केवलवह्निपक्व-	२६.३
उपोदिकालाबुपटोलकानां	१४.३
उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्ण-	**४०.१**
एलामृताम्भोधरकट्फलानां	**४५.१**
ऐक्षवं रसमुदस्यति क्षणा-	२४.३
कणामूलतो लड्डुकापूपसट्टादि-	३०.३
कपोत-पारावत-नीलकण्ठ-	**२७.१**
कपिञ्जलानां पिशितानि जग्ध्वा	२७.२
कर्कारुचीनातकयोः फलं च	३३.२
कर्पूर-पूगीफल-नागवल्ली-	**२२.१**
कवलजेषु गदेष्वथ कारयेत्	४३.३
कवलमार्द्रयुतं द्रवजं पुनः	४३.४
कृशरमहिषयोषित्क्षीरयोः सैन्धवेन	१८.२

।। इति ।।

परिशिष्ट-९.

शब्दसंक्षेप-सूची

अ.मं.	अजीर्णामृतमञ्जरी
अ.हृ.चि.	अष्टांगहृदयम्, चिकित्सास्थानम्
का.सं., खिल.	काश्यपसंहिता, खिलस्थानम्
च.सं.नि.	चरकसंहिता, निदानस्थानम्
च.सं.सू.	चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्
मनु.	मनुस्मृतिः
माधव., अजीर्ण.	माधवनिदानम्, अजीर्णप्रकरणम्
शार्ङ्ग.सं.	शार्ङ्गधरसंहिता
सु.नि.	सुषेण-निघण्टु
सु.सं.सू.	सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थानम्

परिशिष्ट-१०.

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

अजीर्णमञ्जरी- पण्डित दत्तराम माथुर कृत भाषा टीका सहित, काशीसमान यन्त्रालय, मथुरा में लाला हरिप्रसाद साहूकार के प्रबन्ध से छपी, सं. १९४२ वि. माघ मास।

अजीर्णमञ्जरी- डा. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी कृत विमला हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्बा आयुर्विज्ञान ग्रन्थमाला, वाराणसी, द्वितीय संस्करण-२००६ ई.

अजीर्णमञ्जरी- निघण्टरत्नाकर (प्रथमभाग) के पृष्ठ ५८३ से ५८८ तक मराठी भाषानुवाद के साथ प्रकाशित, सम्पा.- कृष्णशास्त्री नवरे, वासुदेव लक्ष्मण पणशीकर, कृष्णाजी विठ्ठल सोमण, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, द्वितीय संस्करण, १९३६ ई.।

अजीर्णमञ्जरी- तेलगू भाषानुवाद सहित, सुन्दरय्या विज्ञान केन्द्र, चेन्नई, १९२७ई.।

अष्टांगहृदयम्- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-१; पुनर्मुद्रण वि.सं. २०६७;

आपस्तम्ब धर्मसूत्र- व्याख्याकार- डा. नरेन्द्रकुमार आचार्य, विद्यानिधि प्रकाशन, डी-१०/१०६१, खजूरी खास, दिल्ली-४, प्रथम संस्करण-२०१० ई.

आयुर्वेदाब्धिसार (प्रथमभागः)**-** सम्पा. डा. पुल्लेल श्रीरामचन्द्र, संस्कृत-परिषद् उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) ५००००७, प्रथम संस्करण-१९८९ ई.।

काश्यपसंहिता- अनुवादक- श्रीसत्यपाल भिषगाचार्य, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, के. ३७/ ११६ गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-१, वि.सं. २०१०.

चरकसंहिता- सम्पा.- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्बा ओरियण्टालिया, बंग्लो रोड़, ९-यू.बी. जवाहरनगर, दिल्ली-७, प्रथम संस्करण-२००४ ई.

चाणक्यसूत्र (कौटलीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत)- अनुवादक- उदयवीर शास्त्री, मेहरचन्द लछमनदास, २७३६ कूचा चेलां, दरियागंज, नई दिल्ली-२;

चिकित्सातिलकम्- सम्पा. वे.सु. वेंकट सुब्रह्मण्यशास्त्री, राजकीय हस्तलिखित ग्रन्थालय, मद्रास, १९८३ ई.।

महाभारत- गीताप्रेस, गोरखपुर।

मनुस्मृतिः- वेंकटेश्वर मुद्रणालय, मुम्बई, वि.सं. १९६९;

माधवनिदानम्- सम्पा.- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई।

योगरत्नाकर- वैद्य श्रीलक्ष्मीपति शास्त्री, चौखम्बा प्रकाशन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-१, पुनर्मुद्रण वि.सं. २०६७;

वृन्दमाधव- सम्पा.- डा. प्रेमवती तिवारी, चौखम्बा विश्वभारती, वाराणसी-१, प्रथम संस्करण २००७ ई.।

शार्ङ्गधरसंहिता- सम्पा. सिद्धिनन्दन मिश्र, चौखम्बा ओरियण्टालिया, बंग्लो रोड़, ९-यू.बी. जवाहरनगर, दिल्ली-७, प्रथम संस्करण-१९८५ ई.

सुषेण-निघण्टु (आयुर्वेद-महोदधि)- आचार्य बालकृष्ण, पतञ्जलि विश्वविद्यालय, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार, अगस्त २०१३ ई. (प्र.सं.)।

सुश्रुतसंहिता- सम्पा.- त्रिविक्रमात्मज यादवशर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-१; २०१२ ई.।